प्राक्कथन

आत्म स्वरूप को जान लेना ही 'सच्चा ज्ञान है। इस सच्चे ज्ञान को जन साधारण तक पहुँचाने के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। हम क्या हैं? हमारी वस्तुऐं क्या हैं? हमारी सत्ता कितनी है? आदि का ज्ञान होते ही मनुष्य उस प्रकाश पथ पर जा खड़ा होता है जहां से उसे सब चीजें साफ साफ दिखाई पड़ती हैं। वहाँ खड़ा होकर न तो वह रोता चिल्लाता है और न किसी प्रकार के भ्रम में भटक सकता है।

साधनों के सम्बन्ध में जबानी जमा खर्च हम खूब करते हैं। या बड़े बड़े ऐसे २ उग्र साधन उपस्थित करते हैं जिन्हें देख कर साधक चकरा जावें और असफल होने पर अपने भाग्य को दोष देकर चुप बैठ रहें। इस पुस्तक में कोई ऐसे ऊजड़ खाबड़ साधक नहीं हैं। केवल एक बात पर ही सारा जोर दिया गया है कि साधक आत्म चेतना की भूमिका में जाग जावें। वे जब अपने बारे में सोचें तो उनके मस्तिष्क में तुरन्त ही अपना, अविकारी, शक्ति मय, स्वरूप घूम जाय। हर क्षण वे आत्म जागृति की अवस्था में बने रहें। हमारा विश्वास है कि साधक इस साधना के आधार पर आत्म कल्याण कर सकते हैं।

अन्त में सद्गुरु योगी रामाचारक को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं जिनकी पुस्तक (Mental Development) के आधार पर इस पुस्तक को लिखा जा सका है।

१-४-४० ई०

श्रीराम शर्मा

पं० श्रीराम शर्मा

सम्पादक—'अखण्ड ज्योति" आगरा।

मैं क्या हूँ ?

पहला अध्याय

शास्त्र कहता है कि—

> कोऽहं काचमे शक्ति, कः देशं ऽयय भागवी ।
> कः काल कानि मित्राणि, एतच्चिन्त मुहुर्मुहु ॥

क्या हूँ ? मेरी क्या शक्ति है ? मैं कौन हूँ ? मेरा क्या कर्तव्य है ? आदि बातों का बराबर विचार करो । सभी विचारकों ने ज्ञान का एक ही स्वरूप बताया है वह है 'आत्म-बोध !' अपने सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता । जीव असल में ईश्वर ही है । विकारों से बँध कर वह बुरे रूप में दिखाई देता है परन्तु उसके भीतर अमूल्य निधि भरी हुई है । शक्ति का वह केन्द्र है और इतना है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । सारी कठिनाइयां, सारे दुख इसी बात के हैं कि हम अपने को नहीं जानते । जब आत्म स्वरूप को समझ जाते हैं तब, किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता । आत्म स्वरूप का अनुभव करने पर वह कहता है—

"नाहं जातो जन्म मृत्यू कुतो मे, नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ॥ नाहं चित्त शोक मोहौ कुतो मे नाहं कर्त्ता बंध मोक्षौ कुतो मे ॥"

मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, फिर मेरा जन्म मृत्यु कैसे ? मैं चित्त नहीं हूँ फिर मुझे शोक मोह कैसे ? मैं कर्ता नहीं हूँ फिर मेरा बन्ध मोक्ष कैसे ?

जब वह समझ जाता है कि मैं क्या हूं तब उसे वास्तविक ज्ञान हो जाता है और सब पदार्थों का रूप ठीक से देख कर उनका उचित उपयोग कर सकता है चाहे किसी दृष्टि से देखा जाय। आत्म ज्ञान ही सर्व सुलभ और सर्वोच्च ज्ञान ठहरता है।

जीव की एक चिर अभिलाषा है ईश्वर को प्राप्त करना। भीतर ही भीतर कोई एक कसक उसे हर समय टोंचती रहती है। कहते हैं कि लोग ईश्वर को भूले हुए हैं बहिरंग वृत्तियों अन्तरात्मा को कुछ ऐसे नशे में डाल दिया है कि वह प्यास का अनुभव तो करता है पर यह भूल जाता है कि यह प्यास किस चीज मे बुझेगी। उसके आस पास शराब की बोतलें, गरम चाय, स्याही से भरी दवातें वारनिश के भरे डिब्बे रखे हुये हैं। अब उसे इतना ही ज्ञान रह गया है कि कोई वस्तु जो द्रव रूप होती है बड़ी शीतल और तृप्तिकर होती है। जल के वास्तविक रूप को वह भूल गया है। प्यास के मारे कभी स्याही से भरी दवात को मुँह में अटका लेता है और जब बुरा स्वाद देखता है और मुँह काला हुआ पाता है तो उसे थूकता है बुरा बताता है और दूसरी चीज की ओर झुकता है। वारनिश का डिब्बा शराब की बोतल एक एक करके सब को आजमाता है पर एक भी वस्तु संतोष दायक नहीं होती। किसी में कुछ अवगुण है तो किसी में कुछ।

जीव अपने ईश्वर स्वरूप अमृत मय श्रोत में से निकल कर आया है। उसे अमृत जल का स्मरण बना हुआ है उसे ही पाने के लिये बार बार प्रयत्न करता है। धन, दौलत, पुत्र, संतान, स्त्री, भोग विलास, नाचरंग, भोजन इन सब में उस आनन्द की कुछ झलक आती है। इस रूप दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यह नकलें हैं। असल की तसवीरें हैं। जो सुन्दर उद्यान में जाने के लिए उद्यान के जड़ चित्र में घुसना चाहता है वह धोखा खाता है। जो चीज चाहते हो वह यह नहीं है। फिर भी चित्र में घुसना चाहोगे तो पांव तोड़ लोगे या चित्र तोड़ डालोगे। घुसना नहीं हो सकता। मन की चिर अभिलाषा दुनियां के भोग विलासों में पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि सांसारिक वस्तुऐं पांच तत्वों की बनी हुई हैं इन्हें पांच तत्वों का बना हुआ शरीर ही भोग सकता है। आत्मा सूक्ष्म है उस तक इन पदार्थों की पहुंच कैसे हो सकती है? शुद्ध जल की जगह कभी शीशा पी जाता है कभी कोलतार। कभी तेल चाटता है तो कभी कीचड़। इससे तृप्ति होना तो दूर रहा उलटा और कष्ट हो जाता है। इन्हीं कष्टों में प्राणी विलाप करता रहता है। चिन्ता और तृष्णा उसे हर घड़ी सताती रहती है।

रास्ता यह नहीं है। जिस पर हम लोग चल पड़े हैं नशे में चूर होकर झूमते हुए हम लोग न जाने कहां से कहां चले जा रहे हैं, क्या २ कल्पनाऐं कर रहे हैं किस किस से टकरा कर क्या २ कर रहे हैं। एक अच्छा खासा शराब खाना हम लोगों ने बना रखा है और प्याले पर प्याले झुकाये जा रहे हैं। फिर भी अन्तःकरण की गुप्त चेतना मरी नहीं है वह बारबार प्रेरणा करती है कि चलो उठो, भाई घर चलना है। जैसे ही खड़े होकर कदम उठाते हैं वैसे ही पांव लड़खड़ा जाते हैं और कहीं के मारे कहीं लुढ़क पड़ते हैं। इस दशा में घर पहुँचने की इच्छा

अतृप्त ही बनी रहती है और हम ताड़ी खाने के इस कोने से उस कोने तक ही बार बार चक्कर लगाते हैं और वहीं कहीं घर तलाश करने की कोशिश करते हैं। परन्तु वहां घर कहां रखा हुआ है ?

नशों को पीकर हमने आत्मचेतना खो दी है। अब इस दशा से छुटकारा पाने के लिए उस खुमारी को उतारना पड़ेगा और इतनी चेतना लानी पड़ेगी कि हम समझ सकें कि हम हैं कौन! जब यह स्मरण हो आवेगा कि हम अमुक व्यक्ति हैं तब स्वयं मेव देखेंगे कि कहां पड़े हुए हैं। जैसे जैसे उत्सुकता बढ़ती जायगी और विचार शक्ति ठीक होती जायगी वैसे ही वैसे सब चीजों के स्वरूप ठीक ठीक मालूम पड़ते जावेंगे। यह ताड़ी खाना है। यह जल नहीं, शराब है। यह हलुआ नहीं गोबर है। यह दूध की नहर नहीं, गंदी नाली है। यह पहाड़ नहीं दुकान की दीवार है। निदान सब वस्तुएं उसे ठीक ठीक अनुभव होने लगती हैं। वह समझता है कि इन्हें मैं नशे की हालत में कैसा समझता था और वास्तव में वह कैसी हैं। तब वह और अधिक सोचता है कि मेरा घर कहां है ? उसका मार्ग कहां होते हुए है, और मैं किस प्रकार से अपने आनंद मय घर तक पहुंच सकता हूं ? यह सब बातें जान लेने के बाद वह सारी वास्तविकता को जान सकता है और जिस जाल में अब तक उलझा हुआ था वह के सब फन्दे साफ साफ दिखाई देने लगते हैं। उन गांठों को खोल सकने में वह वैसे ही समर्थ होता है जैसे हम अपने कमरबन्द की गांठ को आसानी से खोल लेते हैं।

सब शास्त्र कहते हैं कि जीव भ्रम में पड़ा हुआ है इसलिए संसार में दुख उठा रहा है। नशे की दशा को सब स्वीकार करते हैं। सब डाक्टर एक ही निदान करते हैं कि रोगी तो त्रिदोष

है—सन्निपात में बक रहा है। इसमें किसी को मतभेद नहीं है। भेद सिर्फ दवा के बारे में है। विभिन्न मतों की द्वारा मनुष्य को आध्यात्मिक पथ की ओर लेजाने का जो प्रयत्न किया जाता है उसी में फर्क है। रोगी बकता है, आंखें लाल हैं, पांव पटकता है, हाथों में कपड़े फाड़ता है, शिर में दर्द है, गर्मी मे चिल्लाता है, प्यास के मारे मरा जाता है। वैद्यों के दृष्टिकोण इसके संबंध भिन्न भिन्न हैं और वे अपनी इच्छानुसार ही दवाओं का प्रयोग करते हैं, कोई बकवाद रोकने के लिए मुंह पर पट्टी बांधता है है, कोई आंखों में गुलाबजल डालता है कोई पैरों की मालिस कराता है और बर्फ चुसकाता है। यह सब उपचार कुछ लाभ कर सकते हैं पर आंशिक। और सिर्फ इतने कि शराबी को यह बता दिया जाय कि यह तो चार पाई रखी हुई, मोटर नहीं है।

अनेक साधक आध्यात्म पथ पर बढ़ने का प्रयत्न करते हैं पर उन्हें केवल एकाङ्गी और आंशिक साधन करने के तरीके ही बताये जाते हैं। खुमारी उतरना तो वह है जिस दशा में मनुष्य अपने रूप को भली भांति पहचान सके। जिस इलाज से हाथ पैर पटकना ही सिर्फ बन्द होता है या आंखों की सुर्खी ही मिटती हो वह पूरे इलाज नहीं है। यज्ञ, तप, दान, व्रत, अनुष्ठान, जप आदि साधन लाभ प्रद हैं, इनकी उपयोगिता से कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। इनसे पवित्रता बढ़ती है, सतोगुण की वृद्धि होती है, पुण्य बढ़ता है किन्तु वह चेतना प्राप्त नहीं होती जिसके द्वारा संपूर्ण पदार्थों का वास्तविक रूप जाना जा सकता है और सारा भ्रम जाल कट जाता है।

इस पुस्तक में हमारा उद्देश्य साधक को आत्म-ज्ञान की चेतना में जगा देने का है क्योंकि हम समझते हैं कि मुक्ति के

लिए इससे बढ़कर और कोई सरल एवं निश्चित मार्ग हो नहीं सकता। जिसने आत्मस्वरूप का अनुभव कर लिया सद्गुण उसके दास हो जाते हैं और दुरगुणों का पता भी नहीं लगता कि वे कहां चले गये।

एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय।

जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय॥

इस एक ही साधना के करने से और सब की साधना हो जाती है। पत्ते पत्ते को सींचकर जिन्होंने पेड़ को हरा न कर पाया हो वे इस जड़ में पानी देकर देखलें कि क्या फल होता है। हमारे अनुभव में ऐसे अनेक साधक आये हैं जिन्होंने अष्टांग योग विधि पूर्वक आरम्भ किया है, उनमें से अत्यन्त प्रबल मनस्वियों को छोड़कर शेष को च्युत हो जाना पड़ा। कारण यह है कि आरंभिक यम, नियम ही ठीक तौर से नहीं सध पाते। अहिंसा सत्य. अस्तेय, ब्रह्मचर्य. अपरिग्रह, यम। और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान नियम। इनकी साधना सरल नहीं हैं। हर घड़ी ध्यान रखते हैं कि हमसे कहीं हिंसा न हो जाय, झूठ न निकल जाय, चोरी न कर बैठें, दुराचारों की कल्पना न आजाय, ईश्वर का विस्मरण न हो जाय आदि, पर जितनी ही सावधानी करते हैं उतने ही प्रबल वेग से दुष्ट वासनाऐं घेर लेती हैं। साधक पूरी ताकत के साथ युद्ध करता है लेकिन आखिर बेचारा परास्त हो जाता है। साधना से भ्रष्ट हुआ जिज्ञासु पूर्व की अपेक्षा अधिक वेदना का अनुभव करता है। अपने ऊपर झुंझलाता है, वासनाओं के प्रति क्रोध प्रगट करता है, साधन में त्रुटि देखता है, ईश्वर और भाग्य पर दोष लगाता है फिर भी उसे चैन नहीं मिलता और परास्त सैनिक की तरह अपनी वेदनाओं को समेट कर एक कोने में पड़ा सिसकता रहता है।

हम जानते हैं कि ऐसा क्यों होता है। मन के सारे संस्कार वही पुराने हैं, उसकी अनुभूति में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है. जीवन की धारा उसी दिशा में बह रही है। यह होते हुए भी उसके निकलने के दरवाजों को रोकने का प्रयत्न किया जाता है। जिस नाली में तेजी के साथ ऊपर से पानी बड़ा चला आ रहा है उसको मिट्टी की मेंड़ लगाकर जो रोकने का प्रयत्न करता है। वह बेचारा भोला भाला बच्चा है उसे मालूम नहीं कि इस प्रयत्न में सफलता कठिन है। मैं एक जगह मिट्टी लगाऊंगा तो दूसरी जगह से पानी फूट निकलेगा, दूसरी रोकूँगा तो तीसरी जगह बहाव पड़ जायगा। पूरी ताकत से मेंड लगाऊंगा तब भी कुछ देर में इतना पानी जमा हो जायगा कि इस कमजोर मेंड को एक ही धक्के में गिरा देगा। जानकार मनुष्य उस बच्चे को समझाता है कि मुन्ना, तरीका यह नहीं है जिसे तुम करते हो। नाली के बहाव में मेंड़ मत लगाओ इसे ऐसा ही बहने दो। उस स्थान की तलाश करो जहां से यह पानी आता है। वह पानी यदि रुक सकता है तो वहां रोकदो न रुक सके तो बहाव दूसरी तरफ कर दो जहां होते हुए वह निकल जाय। तब तुम्हारी नाली अपने आप सूख जायगी इसमें बूंद भी पानी नहीं आवेगा। इन्द्रियों के भोगों को रोकने का प्रयत्न करना नाली में मेड़ लगाना है और पानी का बहाव पलट देना जीवन की अनुभूति धारा को बदल देना है। वह देखो राम और श्याम एक ही उम्र के एक से ही स्वास्थ्य, विद्या, धन और परिस्थितियों वाले हैं परन्तु एक सच्चा ईश्वर भक्त और सदाचारी है, दूसरा विषयों में इतना लम्पट है कि बिना भोगों के एक दिन भी नहीं रह सकता। इस अन्तर का कारण दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर होना है एक भोगों से घृणा करता है तो दूसरा प्रेम। घृणा

करने वाले को वासना छूती भी नहीं जबकि प्रेम करने वाला उसका गुलाम बना हुआ है।

सद्गुण दुर्गुण दोनों ही आत्मा और मन की अपेक्षा बहुत स्थूल हैं। यह स्वयं हमें आच्छादित नहीं कर सकते वरन हम जिसे चाहते हैं उसे पकड़ लेते हैं। कपड़ों से हम जकड़े हुए नहीं हैं वरन उन्हें हमने अपने ऊपर लपेटा हुआ है। भोगों से घृणा करने वाले को लोलुपता अपनी ओर खींच नहीं सकती। जिसने भोजन और शरीर के गहरे संबंध को अच्छी तरह समझ लिया है मिठाई को देखकर उसके मुंह में से लार नहीं टपकती। इन्द्रिय दमन, मनोनिग्रह, सतोगुण की आराधना, तमोगुणों का त्याग यह सब बड़े कठिन अनुष्ठान दिखाई देते हैं किन्तु आत्म दर्शी इनकी कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं देखता। वह भ्रम में पड़े हुए लोगों से कहता है—बाल क्रीड़ा में लगे हुए ऐ मेरे वत्स, यह नाली का पानी तुम से नहीं संभलता तो उठ बैठो, हाथ धो डालो, मेरे साथ चलो मैं तुम्हें इसके मूल स्रोत तक लिये चलता हूं वहां से पानी का बहाव बदल देना बस, तुम्हारी तपस्या पूरी हो जायगी।

आत्म दर्शन का यह अनुष्ठान साधकों को ऊंचा उठावेगा। इस अभ्यास के सहारे वे उस स्थान से ऊंचे उठ जायंगे जहां कि पहले खड़े थे। इस उच्चशिखर पर खड़े होकर वे देखेंगे कि दुनिया बहुत बड़ी है। मेरा भार बहुत बड़ा है। मेरा राज्य बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है। जितने की चिन्ता अब तक मुझे करनी है। वह सोचता है कि मैं पहले जितनी वस्तुओं को देखता था उससे अधिक चीजें मेरी हैं। अब वह और ऊंची चोटी पर चढ़ता है कि मेरे पास कहीं इस से भी अधिक पूंजी तो नहीं है? जैसे जैसे ऊंचा चढ़ता है वैसे ही वैसे

इसे अपनी वस्तुएं अधिकाधिक प्रतीत होती जाती हैं और अन्त में सर्वोच्च शिखिर पर पहुंच कर वह जहां तक दृष्टि फैला सकता है वहां तक अपनी ही अपनी सब चीजें देखता है। अब तक उसे एक बहिन दो भाई, मा, बाप, दो घोड़े, दस नौकरों के पालन की चिन्ता थी अब उससे हजारों गुने प्राणियों के पालने की चिन्ता होती है। यही अहंभाव का प्रसार है। दूसरे आचार्य इसी को अहंभाव का नाश कहते हैं। बात एक ही है फर्क सिर्फ कहने सुनने का है। रबड़ के गुब्बारे जिनमें हवा भर कर बच्चे खेलते हैं तुमने देखे होंगे। इनमें से एक लो और उसमें हवा भरो। जितनी हवा भरती जायगी उतना ही वह बढ़ता जायगा और फटने के अधिक निकट पहुंचता जायगा। कुछ ही देर में उसमें इतनी हवा भर जायगी कि वह गुब्बारे को फाड़कर अपने विराट रूप आकाश में भरे हुए महान वायुतत्व में मिल जाय। यही आत्म दर्शन प्रणाली है। यह पुस्तक तुम्हें बतावेगी कि आत्म स्वरूप को जानो और विस्तार करो। बस इतने से ही सूत्र में वह सब महान विज्ञान भरा हुआ है जिसके आधार पर विभिन्न अध्यात्म पथ बनाये गये हैं। वे सब फल इस सूत्र में बीज रूप से मौजूद हैं जो किसी भी सच्ची साधना से कहीं भी और किसी भी प्रकार हो सकते हैं।

आत्म स्वरूप को पहचानने से मनुष्य समझ जाता है कि मैं स्थूल शरीर या सूक्ष्म शरीर नहीं हूं। यह मेरे कपड़े हैं। मानसिक चेतनाएं भी मेरे उपकरण मात्र हैं। इनमें मैं बँधा हुआ नहीं हूं। ठीक बात को समझते ही सारा भ्रम दूर हो जाता है और बन्दर मुट्ठी का अनाज छोड़ देता है। आपने यह किस्सा सुना होगा कि एक छोटे मुंह के बर्तन में अनाज जमा

था। बन्दर ने उसे लेने के लिए हाथ डाला और मुट्ठी में भरकर अनाज निकालना चाहा। छोटा मुंह होने के कारण वह निकाल न सका. बेचारा पड़ा पड़ा चीखता रहा कि अनाज ने मेरा हाथ पकड़ लिया है पर ज्योंही उसे असलियत का बोध हुआ कि मैंने ही मुट्ठी बांध रखी है इसे छोड़ूं तो सही। जैसे ही उसने इसे छोड़ा कि अनाज ने बन्दर को छोड़ दिया। काम क्रोधादि हमें इसलिए सताते हैं कि उनकी दासता हम स्वीकार करते हैं जिस दिन हम विद्रोह का झंडा खड़ा कर देंगे, भ्रम अपने बिल में धंस जायगा। भेड़ों में पला हुआ शेर का बच्चा अपने को भेड़ समझता था परन्तु जब उसने पानी में अपनी तस्वीर देखी तो पाया कि मैं भेड़ नहीं शेर हूँ। आत्म स्वरूप का बोध होते ही उसका सारा भेड़पन क्षणमात्र में चला गया। आत्म दर्शन की महत्ता ऐसी ही है। जिसने इसे जाना उसने उन सब दुख दरिद्रों से छुटकारा पा लिया जिनके मारे वह हर घड़ी हाय हाय किया करता था।

आत्मा के वास्तविक स्वरूप की एक बार झांकी कर लेने वाला साधक फिर पीछे नहीं लौट सकता। प्यास के मारे जिसके प्राण सूख रहे हैं ऐसा व्यक्ति सुरसरी का शीतल कूल छोड़ कर क्या फिर उसी रेगिस्तान में लौटने की इच्छा करेगा जहाँ प्यास के मारे क्षण क्षण पर मृत्यु समान असहनीय वेदना अब तक अनुभव करता रहा है। भगवान कहते हैं—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।" जहां जाकर फिर लौटना नहीं होता ऐसा मेरा धाम है। सचमुच वहां पहुँचने पर फिर पीछे को पांव पड़ते ही नहीं। योग-भ्रष्ट हो जाने का वहां प्रश्न ही नहीं उठता। घर पहुँच जाने पर भी क्या कोई घर का रास्ता भूल सकता है?

काम क्रोध लोभ मोहादि विकार और इन्द्रिय वासनाएं

मनुष्य के आनन्द में बाधक बन कर उसे दुख जाल में डाले हुए हैं। पाप और बंधन की यह ही भूल है। पतन इन्हीं के द्वारा होता है और क्रमशः नीच श्रेणी में इनके द्वारा जीव घसीटा जाता रहता है। विभिन्न आध्यात्म पथों की विराट साधनाऐं इन्हीं दुष्ट शत्रुओं को पराजित करने के चक्रव्यूह हैं। अर्जुन रूपी मन को इसी महाभारत में प्रवृत्त होने का भगवान का उपदेश है। आत्म स्वरूप दर्शन का साधक इन शत्रुओं को गुड़खिला कर मार डालना चाहता है। यह सब शत्रु कहाँ बैठे हैं, किस प्रकार आक्रमण करते हैं, कितना इनमें बल है, हमारे किस भाग पर इनका आक्रमण होता है यह बातें जान लेना आधी लड़ाई जीत लेना है। अन्य साधक इन पाप वृत्तियों के विरुद्ध युद्ध ठानते हैं और अन्धाधुंध तीर चलाते हैं इनमें कुछ शत्रु को लगते हैं कुछ मित्रों पर ही प्रहार कर बैठते हैं। चन्द्रायणादि कठिन व्रत करके जो तपस्या की जाती है उससे शत्रु नष्ट होते हैं परन्तु शरीर को जलाने से उसके सद्गुणों का भी तो नाश होता है। कुनैन खाने से मलेरिया बुखार तो चला जाता है पर शरीर की शुद्ध जीवनी शक्ति के नष्ट हो जाने से उष्णता बहरापन आदि अन्य विकार आ घुसते हैं। आत्मदर्शी अपने साधन को इनसे अधिक सरल और निरापद पाता है। वह आत्म मन्दिर में प्रवेश करते ही अपने को इतना ऊंचा बैठा देखता है जहां तक शत्रुओं के तीर नहीं पहुंच सकते वह अपनी आत्मा को सब प्रकार के आघातों से सुरक्षित पाता है। और देखता है कि कामादि विकारों के सारे शस्त्र मोहनी विद्या के बने हुए ऐन्द्रजालिक हैं। यह इन्हीं पर त्रास जमाते हैं जो इनकी सत्ता को स्वीकार करता है। भूत उन्हीं पर चढ़ाई करते हैं जो उन्हें पूजता है। ऊंचा उठा हुआ आत्मदर्शी देखता है कि पाप का कार्य बाजीगर के समान है। वह तमाशा देखने वालों की पहले वह नजर बांध देता है तब

गधे की लीद को रसगुल्ले बना बना कर उन्हें खिलाता है। आत्मदर्शी की नजर बंध नहीं सकती वह उसकी रेखा के बाहर चला गया होता है वहां बैठा बैठा बाजीगर के तमाशे पर हंसता रहता है। रसगुल्ले के धोखे में गधे की लीद खाते हुए तमाशबीनों को वह देखता है। यह सब उसके लिये विनोद और कौतुहल सा है। मदारी से उसे लड़ना नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि उसके पास कुछ भी शस्त्र नहीं है बेचारा दुबला पतला भिखारी अपना पेट पालने के लिए खेल कर रहा है किसी को वह बांधता नहीं। मुफ्त में रसगुल्ले खाने के लालची ही अपने आप उसका डेरा जा खटखटाते हैं। आत्म-दर्शी को युद्धके बखेड़े मे नहीं पड़ना पड़ता। वह इस लड़ाई झगड़े से कतरा कर निकल जाता है और देखता कि जिस महा संग्राम को सिर पर उठा रखा गया है वह कुछ नहीं। एक आक का पौदा खड़ा हुआ है अंधेरेके कारण बालक उसे भेड़िया समझता है और उस पर कंकड़ियां फेंक कर समझता है कि तोप के गोलों से प्रहार कर रहा हूँ। बालक अपने युद्ध पराक्रम में बड़ी शूरता, प्रकट कर रहा है और पौदे की एक पत्ती टूट जाती है तो समझता है कि मैंने भेड़िये की कमर तोड़ डाली। विज्ञानी, बालक के इस युद्ध में रस लेता है पर स्वयं ऐसे युद्ध का विजेता बनना निरर्थक समझता है। आत्मस्वरूप का बोध होते ही उसका नशा उतर गया होता है। वे उपयोगी चित्तवृत्तियाँ जो अनुचित रूप से प्रयोग होने के कारण शत्रु प्रतीत होती थीं शुद्ध ज्ञान के द्वारा क्षण भर में सुव्यवस्थित रूप से काम में आने पर मित्र बन जाती है। वृत्तियों की पिछली और वर्त्तमान स्थिति का मुकाबिला करता हुआ वह कहता है—

"आत्मैवह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥"

अब तक के कथन को पढ़कर पाठक समझ गये होंगे कि

इस पुस्तक के अगले अध्यायों में आत्म-दर्शन के लिये जिन सरल साधनों को बताया गया है उनकी भावना करने से हम उस स्थान तक ऊंचे उठ सकते हैं जहां सांसारिक दुवृत्तियों की पहुँच नहीं हो सकती। जब बुराई न रहेगी तो जो शेष रह जाय वह भलाई ही होगी। इस प्रकार आत्म दर्शन का स्वाभाविक फल दैवी संपत्ति को प्राप्त करना है। आत्म स्वरूप का-अहंभाव का-आत्यन्तिक विस्तार होते होते रबड़ के थैले के समान बन्धन टूट जाते हैं और आत्मा परमात्मा में जा मिलती है। इस भावार्थ को जान कर कई व्यक्ति निराश होंगे और कहेंगे यह तो संन्यासियों का मार्ग है जो ईश्वर में लीन होना चाहते हैं या परमार्थ साधना करना चाहते हैं उनके लिये ही यह साधन उपयोगी हो सकता है। इसका लाभ केवल पारलौकिक है किन्तु हमारे जीवन का सारा कार्यक्रम इहलौकिक है। हमारा तो दैनिक कार्यक्रम व्यवसाय, नौकरी, ज्ञान-संपादन, द्रव्य उपार्जन मनोरंजन आदि हैं। थोड़ा समय पारलौकिक कार्यों के लिये निकाल सकते हैं परन्तु अधिकांश जीवन चर्या हमारी सांसारिक कार्यों में निहित है। इसलिये अपने अधिकांश जीवन के कार्यक्रम में हम इसका क्या लाभ उठा सकेंगे ?

उपरोक्त शंका स्वाभाविक है। क्यों कि हमारी विचारधारा आज कुछ ऐसी उलझ गई है कि लौकिक और पारलौकिक स्वार्थों के दो विभाग करने पड़ते हैं वास्तव में ऐसे कोई दो खंड नहीं हो सकते जो लौकिक है वही पारलौकिक है। दोनों एक दूसरे से इतने अधिक बंधे हुए हैं जैसे पेट और पीठ। फिर भी हम पूरी विचारधारा को उलट कर पुस्तक के कलेवर का ध्यान रखते हुए नये सिरे से समझाने की यहां आवश्यकता नहीं समझते। यहां तो इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि आत्म-दर्शन, व्यवहारिक जीवन को सफल बनाने की सर्व श्रेष्ठ कला·

है। दुनिया में जिनने भी आज तक सफलता प्राप्त की है उसने आत्मस्वरूप को जाना है। हां, एक बात मानने योग्य है। वह यह कि भौतिक वस्तुएं अधिक स्थूल हैं इसलिए आत्म-स्वरूप की स्थूल भूमिका को जगा लेने से भी उनका बहुत कुछ कार्य संपादित हो सकता है। अपने काम काज में हमें आम तौर से जड़ पदार्थों, पशु आदि अविकसित प्राणियों और मनुष्यों से काम पड़ता है। शरीराभिमानी आत्मा मनुष्येतर अन्य जीवों एवं वस्तुओं को प्रभावित कर सकता है अर्थात जन्म जात मोटा आत्म ज्ञान, जितना कि बोलचाल की भाषा में "मैं" कह देने से ज्ञान होता है। उसनी भूमिका को ही यदि सुव्यवस्थित कर लिया जाय तो पशु पक्षी अविकसित जीवों और जड़ पदार्थों को प्रभावित किया जा सकता है। पांव के तलवों को जो कठोर बना लेते हैं वे कांटों को कुचल सकते हैं, कंकड़ियां उनका कुछ नहीं बिगाड़तीं। लोग कठोर सुपाड़ी आदि को दांतसे दबाकर बात की बात में वें तोड़ देते हैं, भारी पत्थरों को उठा कर फेंक देते हैं। सरकसों में बड़े बड़े अद्भुत खेल होते हैं, शब्द भेदी बाण चलाने, मोटर रोकने, छाती पर पत्थर तुड़वाने के कार्य हमने देखे हैं। यह शरीराभिमानी चेतना को अधिक जागृत एवं सुव्यवस्थित करने से होते हैं। इससे कुछ ही ऊंची भूमिका जिसे मन का अभिमानी कहना चाहिये, है। उसे जागृत करने से वह अद्भुत कार्य होते हैं जिन्हें देख कर लोग दांतों तले उंगली दबाये रह जाते हैं।

इच्छा शक्ति और मनोबल की महिमा अब सब लोग समझने लगे हैं। जिन लोगों ने यह शक्ति जान या अनजान में संगठित करली है वह इसके द्वारा भर पूर लाभ उठाते हैं। आपने देखा होगा कि कुछ लोगों में एक विशेष प्रकार की शक्ति होती है जिसके द्वारा वे दूसरों को प्रभावित करते हैं। विरोधी

विचार वाला उनके सामने जाकर बदल जाता है। जो मार आया है वह तलवार छोड़ कर भाग जाता है जिससे वे बात करते हैं उसकी हिम्मत पस्त हो जाती है और उसकी बात स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त वे और कोई चारा नहीं देखते ऐसे मनोबल सम्पन्न पुरुष अपनी विचार धारा मे निकट का वातावरण गुंजित किये रहते हैं। ऋषियों के आश्रम ऐसे ही होते हैं। वहां प्रवेश करते ही आदमी का मन शान्ति सरोवर में डुबकियां लगाने लगता है। उन स्थानों पर प्रवेश करते ही हिंसक जीव भी अपना स्वभाव भूल जाते हैं और सिंह गाय एक बर्तन में पानी पाते हैं। मांस भोजी भयानक पशु उन महा पुरुषों के तलवे चाटते रहते हैं और कुत्ते की तरह आज्ञा पालन करते हैं। यह मनोबल है। प्राणबल जिसके आधार पर मेस्मरेजम के छोटे मोटे खेल किये जाते हैं इससे कुछ ऊंचा है। मनोबल से बाहरी तंद्रा उत्पन्न करके उसके अपने गुण भुला दिये जाते हैं और प्रयोक्ता का मन दूसरे के शरीर का शासन करता रहता है। यह असर हटते ही वह तंद्रित दशा भी छूट जाती है केवल थोड़ा बहुत असर ही बाकी रहता है। प्राणबल इससे अधिक सूक्ष्म है और वह मानसिक भूमिका में अधिक गहरा प्रवेश कर जाता है। कवि लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे श्रोताओं में प्राण फूंक देते हैं और अपनी अनुभूति का दूसरों को अनुभव करा देते हैं। प्राणशक्ति से शरीर की चिकित्सा होने की विधि और उसका विधान दिन दिन अधिक स्पष्ट होता जाता है एवं वैज्ञानिक पुष्टि प्राप्त करता जा रहा है। समस्त शरीर में या उसके किसी भाग में प्राण विद्युत का प्रवेश कराके उसको सहायता दी जाती है फल स्वरूप रक्त की सजीवता बढ़ जाती है जिससे वह रोगों से छुटकारा पाने के योग्य हो जाता है। झाड़ फूंक की चिकित्सा प्रणाली अपने टूटे

फूटे रूप में अब भी प्रचलित है। प्रयोक्ता उसके मूल कारण से कितने ही अपरिचित क्यों न हों, उसमें दंभ की चाहे कितनी ही मात्रा क्यों न मिल गई हों, फिर भी उसमें सत्य का कुछ अंश है जिसके आधार पर पूरे विरोध के होते हुए भी वह अब तक जीवित है और लोक सेवा में अन्य चिकित्सा प्रणालियों का मुकाबिला करती है। शरीर से आगे बढ़ कर मन पर भी प्राणों का अद्भुत असर पड़ता है। रथ के पिछले भाग पर धनुष पटक कर रोता हुआ अर्जुन इसी शक्ति से प्रभावित किया गया था। उसकी सारी विचार धाराऐं और तर्क एक कोने में पटक दिये गए और उस काम में लगा दिया गया जिसे न करने के लिये वह निश्चय किये बैठा था। इस शक्ति का प्रयोग वधिक वाल्मीक पर किया गया था हत्या और लूट के पेशे पर ही जिसका जीवन अवलंबित था, सद्गुरु द्वारा प्राण-परिवर्तन किया गया। उसके हत्या करने के पैने पैने हथियार किसी गुप्त शक्ति ने झटक कर छीन लिये। दक्खिन को जाते हुए बहेलिये की कमर पर उसी शक्ति ने एक लात जमाई और कान पकड़ कर घसीटते हुए किसी दूसरे ही स्थान पर जाकर बिठा दिया। यह स्थान इतना विचित्र था जिसके बारे में उसने जीवन भर कभी कल्पना भी नहीं की थी। ऐसी हुंकारों के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं जिनके आवाहन पर असंख्य नर नारी मंत्र मुग्ध की तरह दौड़ते हुए चले गये और अपने प्राणों को कंकड़ी की तरह फेंक दिया। दूर की बातों को छोड़िये इसी देश की अभी पिछले दो वर्षों की बात को ले लीजिये गांधी की रण भेरी ने भारत के चालीस करोड़ प्राणों को गुंजा दिया। कितनी संपत्ति स्वाहा करदी गई, कितने नौनिहाल जेलों में सड़े, कितनों ने अपने जीवन को होम दिया। कायरों को शूर और मुर्दों को जीवित बनाने की शक्ति प्राणों में होती है। जितने जितने गहरे

चलते हैं उतनी ही सूक्ष्मता और बढ़ती जाती है। आत्मबल इन दोनों से अधिक व्यापक, विस्तृत एवं शक्तिशाली है। इसका प्रभाव अधिक और स्थायी भी होता है। भृंग, कीड़े को अपने शरीर तुल्य बना लेती है, पारस लोहे को सोना बना देता है परन्तु आत्मबल इससे अधिक बलवान है। वह करीब करीब उतनाही सूक्ष्म है जितने विश्व के सूक्ष्मतर अन्य परिमाणु। भूत प्रेत हमें आंखों से दिखाई नहीं पड़ते किन्तु एक प्रेत दूसरे प्रेत के स्वरूप और कार्यक्रम को भली भांति देख सकता है। इस प्रकार सृष्टि के सूक्ष्मतर परिमाणुओं जैसे आध्यात्मिक परमाणु अपने सजातियों की गति विधि के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। पखेरू चाहे जिस पेड़ पर उड़ कर बैठ सकता है। और बहुत ऊंचा उड़ सकता है किन्तु हम वैसा नहीं कर सकते क्योंकि पक्षियों जैसे उड़ने की इन्द्रियां हमारे शरीर में नहीं हैं। जिन बातों को हम स्थूल शरीर तक ही सीमित रह कर नहीं जान सकते हैं। जगा हुआ आत्मा एक पखेरू है जिसके लिये अपना शरीर ही नहीं दूसरे शरीरों में भी घुस सकना वैसे ही संभव है जैसे पक्षी का एक पेड़ पर से उड़कर दूसरे पर चला जाना और उसके पत्ते, डाली, फूल, फल आदि को आसानी से देख लेना। द्रष्टा, तत्वदर्शी, अन्तर्यामी की उपाधि उन्हीं महा पुरुषों को मिलती है जिन्होंने आत्मबल को जगा लिया है।

शरीरबल, मनोबल, प्राणबल और आत्मबल के बारे में उपरोक्त पंक्तियां इसलिये लिखी गई हैं कि पाठक जान सकें कि एक के बाद दूसरा अधिक गहरा और शक्ति शाली है। और वह यह भी अनुभव करलें कि शरीर को पुष्ट बना कर जैसे वह इन्द्रिय, भोगों को अच्छी तरह भोग सकता है, उसी प्रकार गहरा–अधिक गहरा–उतर कर वह और अधिक समर्थ हो सकता है। यह बात नहीं है कि शारीरिक इन्द्रियों के ही भोग हों, इन

सब सूक्ष्म शरीरों की कुछ विशेष इन्द्रियां हैं, उनकी जाग्रति के साथ भोगों के दरवाजे भी खुलते हैं। अष्ट सिद्धि, नव निद्धि, जिनके अन्तर्गत है। महर्षि पातंजलि का योगदर्शन कहता है कि छोटा या बड़ा रूप कर लेना, भूत, भविष्यत का ज्ञान प्राप्त कर लेना, सब प्राणियों की बोली पहचान लेना, पूर्व जन्म का ज्ञान होना, दूसरों के मन की बात जान लेना, हाथी के समान बल प्राप्त करना, नक्षत्रों का हाल जानना, भूख प्यास से बचे रहना सिद्धों के दर्शन करना, वायु में उड़ना, आग से न जलना, दिव्य सन्देश सुनना, वश में करना, सुन्दर बनना, सत्ता प्राप्त करना, शरीर को पूरी तरह अधिकार में रखना आदि अनेक सिद्धियां योगाभ्यास-आत्मबल द्वारा प्राप्त होती हैं। अनंत आनंद-कैवल्य पद भी आत्म दर्शन का ही परिणाम है।

यहां हम ऐसा कुछ नहीं कह रहे हैं कि इस पुस्तक को पढ़ते ही पाठक इन सिद्धियों को या ऐसी ही किसी अद्भुत शक्ति को प्राप्त कर लेंगे। पर हम यह जानते हैं कि यही एक मार्ग है जिस पर चलता हुआ साधक इन शक्तियों को अपने में देख सकता है। जितनी ही अधिक गहरी गति उसकी होती जायगी उतनी ही सफलता दिखाई देगी। एक प्रश्न यहां उपस्थित होता है कि ऐसी आश्चर्यजनक बातें दिखाने वाले हमारे देखने में क्यों नहीं आते ? कारण यह है कि निन्यानवे का चक्कर हर काम में लगा हुआ है। एक गरीब आदमी चाहता था कि मुझे कुछ रुपये मिलें तो खूब मौज उड़ाऊं। दैव योग से उसे कहीं से ९९) रुपये प्राप्त हो गये। वह बहुत प्रसन्न हुआ और सोचा कि एक रुपया और कमाऊं तो यह पूरे सौ हो जांय। उसने अधिक परिश्रम और कम खर्च करके सौ रुपये पूरे कर लिये। अब उसे एक सौ पांच, एक सौ दस, डेढ़ सौ, दो सौ, पांच सौ, हजार

लाख कमाने की धुनि लग गई और गरीबी के दिनों के वे विचार तुच्छ प्रतीत होने लगे जिनके अनुसार वह कुछ रुपया मिलने पर मौज करना चाहता था। साधना का मार्ग कठिन है। बड़े परिश्रम के साथ जो साधक कुछ ऊंचा चढ़ जाता है उसे सांसारिक मनोरंजन गुड़ियों का सा खेल प्रतीत होता है, उस समय वह इन सिद्धियों का काम में लाना तो दूर उलटे इन्हें प्रलोभन, बाधक एवं साधना खंडित करने वाली समझता है और इन्हें ठुकरा कर अपने पूर्ण विकाश—मुक्ति के लिए आगे बढ़ता चला जाता है। वह हम आपको आग से न जलने और हवा में उड़ने का तमाशा दिखा कर भीख मांगने नहीं आता फिर घर बैठे; इन्हें किस प्रकार देख पाया जाय? जिन लोगों ने उन्हें ढूंढ़ा है उनने पाया है। इन पंक्तियों का लेखक ऐसे कई महा पुरुषों के दर्शन करके अपना जीवन धन्य कर सका है चमत्कारिक कामों को दिखाने की इच्छा भी एक श्रेणी तक रहती है। इस श्रेणी तक पहुंचे हुए लोग अपने आस पास ही आप तलाश कर सकेंगे। मनोरंजन शालाओं और अन्य अवसरों पर आप सब अद्भुत काम करने वाले लोगों को देखते और सुनते रहे होंगे। बस, तमाशा दिखाने की इच्छा करने वालों का अभ्यास इसी सीमा तक बढ़ सकता है। क्योंकि फिर साधन करने में मन न लग कर तमाशा दिखाने में रुचि हो जाती है और तब वह शक्ति बढने की अपेक्षा दिन दिन क्षीण होती जाती है।

इस पुस्तक में सिद्धियों का विवरण करने की, उनकी साधना की तरफ पाठकों को झुकाने की हमारी तनिक भी इच्छा नहीं है। क्योंकि यह विषय पात्रता का और अधिकारी है। बन्दरों के हाथ में भरी हुई बन्दूक देने का साहस कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति नहीं कर सकता। उनका उल्लेख तो इसलिए करना पड़ा है कि इसी महान पथ पर आगे मिलने वाले यह हरे भरे बगीचे

हैं; जो साधक को अपने आप मिलते हैं और जिनकी झांकी करके वह जान सकता है कि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ। प्राप्त करने पर उनका प्रदर्शन करने की शास्त्र आज्ञा नहीं देता क्योंकि इससे लोगों का सार्वजनिक और साधारण जीवन खतरे में पड़ सकता है। इस पुस्तक के अगले अध्यायों में जो साधन बताया जावेगा वह आत्म स्वरूप का दर्शन करने के लिये है। यह मार्ग अलौकिक सिद्धियों का दरवाजा नहीं खोलता और उन लालच भरे बगीचों में घुमाने की व्यवस्था नहीं करता जिनके लिए कि कुछ लोग खास तौर से लार टपकाते फिरते हैं। हम अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर जानते हैं कि ऐसे लोग जो करामात सीखने या उससे फायदा उठाने के लिए बुरी तरह ललचाते फिरते हैं वे उनका अनुचित लाभ उठाने के इच्छुक, स्वार्थी और पेटू होते हैं। खुशामद और रिश्वत खोरी की उनकी आदत इस विद्या पर कब्जा करने की भी घात लगाना चाहती है किन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि उसने इसकी कुंजी त्यागी और तपस्वियों के हाथ में दे रखी है। और भगवान भूतनाथ को योगिराज को नियुक्त किया है।

साधारण और स्वाभाविक योग का सारा रहस्य इसमें छिपा हुआ है कि आदमी आत्म स्वरूप को जाने, अपने गौरव को पहचाने, अपने अधिकार को तलाश करे, और अपने पिता की अतुलित सम्पत्ति पर अपना हक पेश करे। यह राज मार्ग है। सीधा सच्चा और बिना जोखों का है। यह मोटी बात हर किसी की समझ में आ जानी चाहिए कि अपनी शक्ति और औजारों की कार्य क्षमता की जानकारी और अज्ञानता, किसी भी काम की सफलता असफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि उत्तम से उत्तम बुद्धि भी तब तक ठीक ठीक फैसला

नहीं कर सकती जब तक उसे वस्तुओं का स्वरूप ठीक तौर से न मालूम हो जाय। जिसको यह नहीं मालूम है कि मेरा चर्खा कहाँ टूटा है, कहां टेढ़ा है, रुई अच्छी है या खराब है, मेरा स्वास्थ्य कितनी देर कातने लायक है वह बुढ़िया उल्टा सीधा कातती तो रहेगी पर नतीजा क्या और कैसा होगा इसका कोई अन्दाज नहीं कर सकती। सब चीजें भाग्यवश अच्छी हुईं तो ज्यादा और अच्छा सूत कत जायगा। चर्खे को कहीं कुछ ऐब हुआ तो उंगली जैसे मोटे तार निकालेगा। यदि उसे सब बातें ठीक तौर से मालूम हों तो वह कातने का ठीक हिसाब बना सकती है और निश्चित लाभ उठा सकती है। उस मूर्ख वैद्य को आप क्या कहेंगे जो रोग निदान, औषधियों के गुण दोष, शरीर विज्ञान, भैषज्य निर्माण प्रणाली के बारे में कुछ भी नहीं जानता और चाहे जिस रोग में, चाहे जिस प्रकार चाहे जो दवा दे देता है। इसका फल भी चाहे जो हो सकता है। हम सब लोग इसी प्रकार अंधेरे में तीर छोड़ते रहते हैं जिनका फल चाहे जो हो सकता है। अंधे के हाथों बटेर भी लग सकती है, और बिच्छू का डंक भी मिल सकता है। होता भी यही है कभी हम हंसते दिखाई देते हैं और कभी रोते २ घर भर देते हैं। अव्यवस्था के झूले में पड़ा हुआ हमारा जीवन वायु के रुख के अनुसार हिलता रहता है और हम दैव योग से जो कुछ प्राप्त हो जाय उसी से काम चलाने के लिए विवश पड़े रहते हैं।

हमारी इस दशा पर आत्म तत्व दर्शन का विज्ञान क्रुद्ध होता है। वह ललकारता है कि "ऐ, मोह निद्रितो उठो! ऐ भिखारियो ठहरो! तुम्हें किसी अशक्तता का अनुभव करना या कुछ मांगना नहीं है। तुम अनन्त शक्ति शाली हो, तुम्हारे बल का पारावार नहीं, जिन साधनों को लेकर तुम अवतीर्ण

हुए हो वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। इनकी शक्ति अनेक इन्द्र वज्रों से अधिक है। सफलता और आनंन्द तुम्हारा जन्म जात अधिकार है। उठो, अपने को, अपने हथियारों को, और काम को भली प्रकार पहचानो और बुद्धि पूर्वक जुट जाओ। फिर देखें कैसे वह चीजें नहीं मिलती। जिन्हें तुम चाहते हो। तुम कल्पवृक्ष हो, कामधेनु हो और सफलता की साक्षात मूर्ति हो। भय और निराशा का कण भी तुम्हारी पवित्र रचना में नहीं लगाया गया है। यह लो, अपना अधिकार संभालो।"

यह पुस्तक बतावेगी कि तुम शरीर नहीं हो, जीव नहीं हो, वरन ईश्वर हो। शरीर की, मन की जितनी भी महान शक्तियाँ हैं वे तुम्हारे औजार हैं। इन्द्रियों के तुम गुलाम नहीं हो, आदतें तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं, मानसिक विकारों का कोई अस्तित्व नहीं, अपने को और अपने वस्त्रों को ठीक तरह से पहचान लो। फिर जीव का स्वाभाविक धर्म उनका ठीक उपयोग करने लगेगा। भ्रमरहित और तत्व दर्शी बुद्धि से हर काम कुशलता पूर्वक किया जा सकता है। यही कर्म कौशल योग है। गीता कहती है—'योग कर्मस्तु कौशलम्'। तुम ऐसे ही कुशल योगी बनो। लौकिक और पार लौकिक कार्यों में तुम अपना उचित स्थान प्राप्त करते हुए सफलता प्राप्त कर सको और निरंतर विकाश की ओर बढ़ते चलो, यही इस साधन का उद्देश्य है।

ईश्वर तुम्हें इसी पथ पर प्रेरित करें।

दूसरा अध्याय

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहु श्रुतेन।"

शास्त्र कहता है कि—यह आत्मा प्रवचन बुद्धि या बहुत सुनने से प्राप्त नहीं होती।

प्रथम अध्याय को समझ लेने के बाद तुम्हें इच्छा हुई होगी कि उस आत्मा का दर्शन करना चाहिए जिसे देख लेने के बाद और कुछ देखना बाकी नहीं रह जाता। यह इच्छा स्वाभाविक है। शरीर और आत्मा का गठ-बन्धन कुछ ऐसा ही है जिसमें जरा अधिक ध्यान से देखने पर वास्तविकता झलक जाती है। शरीर भौतिक स्थूल पदार्थों से बना हुआ है किन्तु आत्मा सूक्ष्म है। पानी में तेल डालने पर वह ऊपर ही उठ आता है लकड़ी के टुकड़े को तालाब में कितना ही नीचा पटको वह ऊपर को ही आने का प्रयत्न करेगा क्योंकि तेल और लकड़ी के परमाणु पानी की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं। गरमी ऊपर को उठती है अग्नि की लपटें ऊपर को ही उठेंगी। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और वायु का दबाव उसे रोक नहीं सकता है। आत्मा शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म है इसलिए वह इसमें बंधी हुई होते हुए भी इसमें पूरी तरह घुल मिल जाने की अपेक्षा ऊपर उठने की कोशिश करती रहती है। लोग कहते हैं कि इन्द्रियों के भोग हमें अपनी ओर खींचे रहते हैं पर यह बात सत्य नहीं है। सत्य के दर्शन कर सकने के योग्य सुविधा और शिक्षा प्राप्त न होने पर झक मार कर अपनी

आन्तरिक प्यास को बुझाने के लिए विषय भोगों की कीचड़ पीता है। यदि उसे एक बार भी आत्मानन्द का चस्का लग जाता तो दर दर पर क्यों धक्के खाता फिरता। मैं जानता हूँ कि इन पंक्तियों को पढ़ते समय तुम्हारा चित्त वैसी ही उत्सुकता और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है जैसी बहुत दिनों से बिछुड़ा हुआ परदेशी अपने घर कुटुम्ब के समाचार सुनने के लिये आतुर होता है। यह एक मजबूत प्रमाण है जिससे सिद्ध होता है कि मनुष्य की आन्तरिक इच्छा आत्म स्वरूप देखने की बनी रहती है। शरीर में रहता हुआ भी वह उसमें घुल मिल नहीं सकता। वरन् उचक-उचक कर अपनी खोई हुई किसी चीज की तलाश करता रहता है, बस वह स्थान जहाँ भटकता है यही है। उसे यह याद नहीं आती कि मैं क्या चीज ढूंढ रहा हूँ। मेरा कुछ खो गया है, इसका अनुभव करता है। खोई हुई वस्तु के अभाव में दुख पाता है किन्तु माया जाल के पर्दे से छिपी हुई चीज को नहीं जान पाता। चित्त बड़ा चंचल है घड़ी भर भी एक जगह नहीं ठहरता इसकी सब लोग शिकायत करते हैं परन्तु कारण नहीं जानते कि मन इतना चंचल क्यों हो रहा है। वह अपनी खोई हुई वस्तु के लिए हाहाकार मचा रहा है। बारहसिंगा कोई अद्भुत गंध पाता है और उसके पास पहुँचने के लिए दिन रात चारों ओर दौड़ता रहता है। क्षण भर भी उसे विश्राम नहीं मिलता। यही हाल मन का है। यदि वह समझ जाय कि कस्तूरी मेरी नाभि में रखी हुई है तो वह कितना आनन्द प्राप्त कर सके और सारी चंचलता भूल जाय।

आत्म दर्शन का मतलब अपनी सत्ता, शक्ति और साधनों का ठीक ठीक स्वरूप अपने मानस पटल पर इतनी गहराई के साथ अंकित कर लेना है कि वह दिन भर जीवन—में कभी भी भुलाया न जा सके। तोता रटंत विद्या में तुम बहुत प्रवीण हो

सकते हो। इस पुस्तक में जितना कुछ लिखा है उससे दस गुना ज्ञान तुम सुना सकते हो, बड़े बड़े तर्क उपस्थित कर सकते हो। शास्त्रीय बारीकियां निकल सकते हो। परन्तु यह बातें आत्म मन्दिर के फाटक तक ही जाती हैं इससे आगे इनकी गति नहीं है। रट्टू तोता, पंडित नहीं बन सकता। शास्त्र ने स्पष्ट कर दिया कि "यह आत्मा उपदेश बुद्धि या बहुत सुनने से प्राप्त नहीं हो सकता।" अब तक तुम उतना सुन चुके हो जितना अधिकारी भेद के कारण आप लोगों को उल्टा भ्रम में डाल देता है आज हम तुम्हारे साथ कोई बहस करने उपस्थित नहीं हुये हैं। यदि तुम्हें यह विषय रुचि कर हो और आत्म दर्शन की लालसा हो तो हमारे साथ चल आओ। अन्यथा अपना मूल्यवान समय नष्ट मत करो।

आत्म दर्शन की सीढ़ियों पर चढ़ने से पहल सर्व प्रथम सम-तल भूमि पर पहुँचना होगा। जहां आज तुम भटक रहे हो वहां से लौट आओ और उस भूमि पर स्थित हो जाओ जिसे प्रवेश द्वार कहते हैं। मानलो कि तुमने अपने अन्य सब ज्ञानों को भुला दिया है और नये सिरे से किसी पाठशाला में भर्ती होकर क, ख, ग, सीख रहे हो। इसमें अपना अपमान मत समझो। तुम्हारा अब तक का ज्ञान झूठा नहीं है। तुम उर्दू खूब पढ़े हो और यदि हिन्दी द्वारा भी लाभ प्राप्त करना चाहो तो एक दम उसका दर्शन शास्त्र नहीं पढ़ने लगोगे वरन् वर्ण माला ही से आरम्भ करोगे। हम अपने आदरणीय और ज्ञानी जिज्ञासुओं की पीठ थपथपाते हुए दो कदम पीछे लौटने को कहते हैं, क्योंकि ऐसा करने से वे प्रथम सीढ़ी पर पांव रख सकेंगे और आसानी एवं तीव्र गति से ऊपर चढ़ सकेंगे।

तुम्हें विचार करना चाहिए कि जब मैं कहता हूं कि "मैं"

त्मिक चेतनायें मानस लोक से आती हैं। किसी के मन में क्या भाव उपज रहे हैं, कौन हमारे प्रति क्या सोचता है, कौन सम्बन्धी कैसी दशा में है, आदि बातों को मानस लोक में प्रवेश करके हम अस्सी फी सदी ठीक ठीक जान लेते हैं। यह तो साधारण लोगों के काम काज की मोटी मोटी बातें हुई। लोग भविष्य को जान लेते हैं, भूत काल का हाल बताते हैं, परोक्ष ज्ञान रखते हैं, ईश्वरीय सन्देश सुनते हैं, यह सब चेतनायें मानसलोक में ही आती है। उन्हें ग्रहण करके जीभ द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। यदि यह मानसिक इन्द्रिय न हुई होती तो मनुष्य बिल्कुल वैसा ही चलता फिरता पुतला हुआ होता जैसे यान्त्रिक मनुष्य विज्ञान की सहायता से योरोप और अमेरिका में बनाये गए हैं। दस सेर मिट्टी और बीस सेर पानी के बने हुए इस पुतले का आत्मा और सूक्ष्म जगत से संबन्ध जोड़ने वाली चेतना यह मानस लोक ही समझनी चाहिए।

अब हमारा प्रयत्न यह होगा कि तुम मानसिक लोक में प्रवेश कर चलो और वहां बुद्धि के दिव्य चक्षुओं द्वारा आत्मा का दर्शन और अनुभव करो। यही एक मार्ग दुनियाँ के संपूर्ण साधकों का है। तत्व दर्शन मानस लोक में प्रवेश करके बुद्धि की सहायता द्वारा ही होता है। इसके अतिरिक्त आज तक किसी ने कोई और मार्ग अभी तक नहीं ढूंढ़ पाया है। प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ही योग की उच्च सीढ़ियां हैं। आध्यात्मिक साधक-योगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम अनेक प्रकार की क्रियाएँ करते हैं। हठ योगी नेति, धोति, वस्ति, आदि करते हैं अन्य मतावलंबियों की साधनाएँ अन्य प्रकार की हैं। यह सब शारीरिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये हैं। शरीर का स्वस्थ्य रखना इसलिए जरूरी समझा जाता है कि मानसिक अभ्यासों में

गड़बड़ न पड़े। हम अपने साधकों को स्वस्थ शरीर रखने का उपदेश करते हैं। आज की परिस्थितियों में उन उग्र शारीरिक व्यायामों की नकल करने में हमें कोई विशेष लाभ प्रतीत नहीं होता। धुंए से भरे हुए शहरी वायु मंडल में रहने वाले व्यक्ति को उग्र प्राणायाम करने की शिक्षा देना उसके साथ अन्याय करना है। फल और मेवे खाकर पर्वत प्रदेशीय नदियों का अमृत जल पीने वाले और इन्द्रिय भोगों से कोसों दूर रहने वाले स्वस्थ साधक हठ योग के जिन कठोर व्यायामों को करते हैं उनकी नकल करने के लिए यदि तुम से कहूँ तो मैं एक प्रकार का पाप करूंगा और बिना वास्तविकता को जाने उन शारीरिक तपों में उलझने वाले साधक, उस मेंढकी का उदाहरण बनेंगे जो घोड़ों की नाल ठुकवाते देख कर आपे से बाहर हो गई थी और अपने पैर में भी वैसा ही कुछ ठुकवा कर मर गई थी। स्वस्थ रहने के साधारण नियमों को सब लोग जानते हैं। उन्हें ही कठोरता पूर्वक पालन करना चाहिए। यदि कोई रोग हो तो किसी कुशल चिकित्सक से इलाज कराना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र पुस्तक हम भी प्रकाशित करेंगे। पर इस साधन के लिए किसी ऐसी शारीरिक योग्यता की आवश्यकता नहीं है जिसका साधन चिरकाल में पूरा हो सकता हो। स्वस्थ रहो, प्रसन्न रहो, बस इतना ही काफी है।

अच्छा चलो, अब साधना की ओर चलें। किसी एकान्त स्थान की तलाश करो। जहां किसी प्रकार के भय या आकर्षण की वस्तुएं न हों वह स्थान उत्तम है। यद्यपि पूर्ण एकान्त के आदर्श स्थान सदैव प्राप्त नहीं होते तथापि जहां तक हो सके निर्जन और कोलाहल से रहित स्थान तलाश करना चाहिए। इस कार्यके लिए नित नये स्थान बदलने की अपेक्षा एक जगह नियत कर

लेना अच्छा है। वन पर्वत, नदी तट आदि की सुविधा न हो तो एक छोटा सा स्वच्छ कमरा इसके लिए चुन लो। जहां तुम्हारा मन जुट जावे। इस तरह मत बैठो जिसमें नाड़ियों पर तनाव पड़े। अकड़ कर छाती या गरदन फुला कर, हाथों को मरोड़ कर या पावों को ऐंठ कर एक दूसरे के ऊपर चढ़ाते हुए बैठने के लिए हम नहीं कहेंगे क्योंकि इन अवस्थाओं में शरीर को कष्ट होगा और वह अपनी पीड़ा को पुकार बारबार मन तक पहुंचा कर उसे उचटने के लिए विवश करेगा। शरीर को बिलकुल शिथिल कर देना चाहिए जिससे समस्त मांस पोशियां ढीली हो जावें और देह का प्रत्येक कण शिथिलता शान्ति और विश्राम का अनुभव करे। इस प्रकार बैठने के लिए आराम कुर्सी बहुत अच्छी चीज़ है। चार पाई पर लेट जाने से भी काम चल जाता है पर शिर को कुछ ऊंचा रखना जरूरी है। मसंद कपड़ों की गठरी या दीवार का सहारा लेकर भी बैठा जा सकता है। बैठने का कोई भी तरीका क्यों न हो उसमें यही बात ध्यान रखने की है कि शरीर रुई की गठरी जैसा ढीला पड़ जावे उसे अपनी साज संभाल में जरा सा भी प्रयत्न न करना पड़े। उस दशा में यदि समाधि की चेतना आने लगे तब भी शरीर के इधर उधर लुढ़क पड़ने का भय न रहे। इस प्रकार बैठ कर कुछ शरीर के विश्राम और मन के शान्ति का अनुभव करने दो। प्रारंभिक समय में यह अभ्यास विशेष प्रयत्न के साथ करना पड़ता है। पीछे अभ्यास बढ़ जाने पर तो साधक जब चाहे तब शान्ति का अनुभव कर लेता है चाहे वह कहीं भी और कैसीही दशामें क्यों न हो। सावधान रहिए, यह दशा तुमने स्वप्न देखने या कल्पना जगत में चाहे जहां उड़ जाने के लिए पैदा नहीं की है और न इसलिए कि इन्द्रिय विकार इस एकान्त वन में कबड्डा खेलने लगें। ध्यान रखिये अपनी इस ध्यानावस्था को भी काबू में रखना और इच्छा-

नुवर्ती बनाना है। यह अवस्था इच्छा पूर्वक किसी निश्चित कार्य पर लगाने के लिए पैदा की गई है। आगे चल कर यह ध्याना-वस्था चेतना का एक अंग बन जाती है और फिर सदैव स्वयमेव बनी रहती है। तब उसे ध्यान द्वारा उत्पन्न नहीं करना पड़ता। वरन्, भय, दुख क्लेश, आशंका, चिन्ता आदि के समय में बिना यत्न के ही वह जाग पड़ती है और साधक अनायास ही उन दुख क्लेशों से बच जाता है।

हां तो उपरोक्त ध्यानावस्था में होकर अपने संपूर्ण विचारों को "मैं" के ऊपर इकट्ठा करो। किसी बाहरी वस्तु या किसी आदमी के सम्बन्ध में बिलकुल विचार मत करो। भावना करनी चाहिए कि मेरा आत्मा यथार्थ में एक स्वतन्त्र पदार्थ है। वह अनंत बल वाला अविनाशी और अखंड है। वह एक सूर्य है जिसके इर्द गिर्द हमारा संसार बराबर घूम रहा है। जैसे सूर्य के चारों ओर नक्षत्र आदि घूमते हैं। अपने को केन्द्र मानना चाहिए, सूर्य जैसा प्रकाशवान। इस भावना को बराबर लगातार अपने मानस लोक में प्रयत्न को कल्पना और रचना शक्ति के सहारे, मानस लोक के आकाश में अपनी आत्मा को सूर्य रूप मानते हुए केन्द्र की तरह स्थिति हो जाओ और आत्मा से अति-रिक्त अन्य सब चीजों को नक्षत्र तुल्य घूमती हुई देखो। वे मुझसे बंधी हुई हैं मैं उनसे बंधा नहीं हूँ। अपनी शक्ति से मैं उनका संचालन कर रहा हूँ, फिर भी वे वस्तुएं मेरी या मैं नहीं हूँ लगा-तार परिश्रम के बाद कुछ दिनों में यह चेतना दृढ़ हो जायगी।

यह भावना झूठी या काल्पनिक नहीं है। विश्व का हर एक जड़ चेतन परमाणु बराबर घूम रहा है। सूर्य के आस-पास पृथ्वी आदि ग्रह घूमते हैं। और समस्त सौर मंडल एक अदृश्य

चेतना की परिक्रिमा करता रहता है। हृदयगत चेतना में का शुद्ध रक्त हमारे शरीर की परिक्रमा करता रहता है। शब्द, शक्ति, विचार या अन्य प्रकार के भौतिक परिमाणुओं का धर्म परिक्रमा करते हुए आगे बढ़ना है। हमारे आस-पास भी प्रकृति का यह स्वाभाविक धर्म अपना काम कर रहा है। हम से भी जिन परमाणुओं का काम पड़ेगा वह स्वभावतः हमारी परिक्रमा करेंगे क्योंकि हम चेतना के केन्द्र हैं। इस बिलकुल स्वाभाविक चेतना को भली भांति हृदयांगम कर लेने में तुम्हें अपने अन्दर एक विचित्र परिवर्तन मालूम पड़ेगा। ऐसा अनुभव होता हुआ प्रतीत होगा कि मैं चेतना का केन्द्र हूं और मेरा संसार मुझ से संबंधित समस्त भौतिक पदार्थ मेरे इर्द गिर्द घूमते रहते हैं। मकान, कपड़े, जेवर, धन, दौलत आदि मुझ से संबंधित हैं पर वह मुझ में व्याप्त नहीं बिलकुल अलग हैं। अपने को चेतना का केन्द्र समझने वाला अपने को माया से सम्बन्धित मानता है पर पानी में पड़े हुए कमल के पत्ते की तरह कुछ ऊँचा उठा रहता है, उसमें डूब नहीं जाता। जब वह अपने को तुच्छ अशक्त और बँधे हुए जीव की अपेक्षा चेतन सत्ता और प्रकाश केन्द्र स्वीकार करता है तो उसे उसी के अनुसार परिधान भी मिलते हैं। बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो उसके छोटे कपड़े उतार दिये जाते हैं। अपने को हीन, नीच और शरीराभिमानी तुच्छ जीव जब तक समझोगे तब तक उसी के लायक कपड़े मिलेंगे। लालच, भोगेच्छा, कामेच्छा, चाटुकारिता, स्वार्थपरता आदि गुण तुम्हें पहनने पड़ेंगे। पर जब अपने स्वरूप के महानतम अनुभव करोगे तब यह कपड़े निरर्थक हो जायंगे। छोटा बच्चा कपड़े पर टट्टी फिर देने में कुछ बुराई नहीं समझता किन्तु बड़ा होने पर वह ऐसा करने से घृणा करता है कदाचित बीमारी की दशा में वह ऐसा कर भी

बैठे तो अपने को बड़ा धिक्कारता है और शर्मिंदा होता है। नीच विचार, हीन भावनाएँ, पाशविक इच्छाएं और क्षुद्र स्वार्थपरता ऐसे ही गुण हैं जिन्हें देख कर आत्म चेतना में विकसित हुआ मनुष्य घृणा करता है। उसे अपने आप वह गुण मिल गये होते हैं जो उसके इस शरीर के लिए उपयुक्त हैं। उदारता, विशाल हृदयता, दया, सहानुभूति, सचाई प्रभृति गुण ही तब उसके लायक ठीक वस्त्र होते हैं। बड़ा होते ही मेंढक की लम्बी पूंछ जैसे स्वयमेव झड़ पड़ती है वैसे ही दुर्गुण उससे विदा होते लगते हैं। और वयोवृद्ध हाथी के दांतों की तरह सद्गुण क्रमशः बढ़ते रहते हैं।

अपने को प्रकाश केन्द्र अनुभव करने के लिए तर्कों से काम न चल सकेगा। क्योंकि हमारी तर्क बहुत ही लंगड़ी और अंधी हैं। तर्कों के सहारे यह नहीं सिद्ध हो सकता कि वास्तव में वही हमारा पिता है जिसे पिताजी कह कर संबोधन करते हैं। इसलिये योगाभ्यास के दैवी अनुष्ठान में इस अग्राहिज तर्क का बहिष्कार करना पड़ता है और धारणा ध्यान एवं समाधि को अपनाना पड़ता है। आत्म स्वरूप के अनुभव में यह तर्क वितर्क बाधक बनें तो उन्हें कुछ देर के लिए विदा कर दो। विश्वास रखो, इन पंक्तियों का लेखक तुम्हें भ्रम में फंसाने या कोई गलत हानिकारक साधन बताने नहीं जा रहा है। उसका निश्चित विश्वास है और वह शपथ पूर्वक तुम से कहता है कि हे मेरे ऊपर विश्वास रखने वाले साधक, यह ठीक रास्ता है। मेरा देखा हुआ है। आओ, पीछे पीछे चले आओ तुम्हें कहीं धकेला नहीं जायगा वरन् एक ठीक स्थान पर पहुँचा दिया जायगा। साधन की विधि बार बार ध्यान रखो ध्यानावस्थित होकर मानसलोक में प्रवेश करो। अपने को सूर्य समान प्रकाशवान सत्ता के रूप में

देखो और अपना संसार अपने आस पास घूमता हुआ अनुभव करो। इस अभ्यास को लगातार जारी रखो और इसे हृदय पट पर गहरा अंकित कर लो तथा इस श्रेणी पर पहुंच जाओ कि जब तुम कहो कि "मैं" तब उसके साथ ही चित्त में चेतना, विचार, शक्ति और प्रतिभा सहित केन्द्र स्वरूप चित्र भी जाग उठे। संसार पर जब दृष्टि डालो तो वह आत्म सूर्य की परिक्रमा करता नजर आवे।

उपरोक्त आत्म स्वरूप दर्शन के साधन में शीघ्रता होने के लिए तुम्हें, हम एक और विधि बताते हैं। ध्यान की दशा में होकर अपने हा नाम को बार-बार धीरे-धीरे, गंभीरता से और इच्छा पूर्वक जपते जाओ। इस अभ्यास से मन, आत्म स्वरूप पर एकाग्र होने लगता है। लार्ड टेनिसन ने अपनी आत्म शक्ति को इसी उपाय से जगाया था वे लिखते हैं - "इसी उपाय से हमने कुछ आत्म ज्ञान प्राप्त किया है। अपनी वास्तविकता और अमरता को जाना है एवं अपनी चेतना के मूल स्रोत का अनुभव कर लिया है।"

कुछ जिज्ञासु आत्म स्वरूप का ध्यान करते समय 'मैं' को शरीर के साथ जोड़ कर गलत धारणा कर लेते हैं और साधन करने में गड़बड़ा जाते हैं। इस विघ्न को दूर कर देना आवश्यक है अन्यथा इस पंच भूत शरीर को आत्मा मान बैठने पर तो एक अत्यन्त नीच कोटि का थोड़ा सा फल प्राप्त हो सकेगा।

इस विघ्न को दूर करने के लिए, ध्यानावस्थित होकर ऐसी भावना करो कि मैं शरीर से पृथक हूँ। उसका उपभोग वस्त्र या औजार की तरह करता हूँ। शरीर को वैसा ही समझने की कोशिश करो जैसा पहनने के कपड़े को समझते हो। अनुभव करो कि शरीर को त्याग कर भी तुम्हारा 'मैं' बना रह सकता है। शरीर को त्याग कर और ऊंचे स्थान से उसे देखने की

कल्पना करो। शरीर को एक पोले घोंसले के रूप में देखो जिसमें से आसानी के साथ तुम बाहर निकल सकते हो। ऐसा अनुभव करो कि इस खोखले को मैं ही स्वस्थ्य, बलवान, दृढ़ और गतिवान् बनाये हुए हूँ। उस पर शासन करता हूँ और इच्छानुसार काम में लाता हूँ। मैं शरीर नहीं हूं वह मेरा उपकरण मात्र है। उसमें एक मकान की भांति विश्राम करता हूँ। देह भौतिक परिमाणुओं की बनी हुई है और उन अणुओं को मैंने ही इच्छित वेश के लिए आकर्षित कर लिया है। ध्यान में शरीर को पूरी तरह भुला दो और 'मैं' पर समस्त भावना एकत्रित करो। तब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि आत्मा शरीर से भिन्न वस्तु है। मैं शरीर से भिन्न हूँ यह अनुभव कर लेने के बाद जब तुम 'मेरा शरीर' कहोगे तो पूर्व की भांति वरन् एक नये ही अर्थ में कहोगे।

उपरोक्त भावना का तात्पर्य यह नहीं है कि तुम शरीर की उपेक्षा करने लगो। ऐसा करना, तो अनर्थ होगा। शरीर को आत्मा का पवित्र मन्दिर समझो उसकी सब प्रकार से रक्षा करना और सुदृढ़ बनाये रखना तुम्हारा परम पावन कर्तव्य है।

शरीर से पृथकत्व की भावना जब तक साधारण रहती है तब तक तो साधक का मनोरंजन होता है पर जैसे ही वह दृढ़ता को प्राप्त होती है वैसे ही मृत्यु हो जाने जैसा अनुभव होने लगता है। और वह वस्तुएं दिखाई देने लगती हैं जिन्हें हम साधना के स्थान पर बैठ कर खुली आंखों से नहीं देख सकते। सूक्ष्म जगत की कुछ धुंधली झांकी उस समय होती है और कई परोक्ष बातें एवं दैवी दृश्य दिखाई देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में नये साधक डर जाते हैं उन्हें समझना चाहिए कि इसमें डरने की कोई बात नहीं है। केवल साधन में कुछ शीघ्रता हो गई है। और पूर्व संस्कारों के कारण इस चेतना में जरा सा

झटका लगते ही वह अचानक जान पड़ी है। इस श्रेणी तक पहुंचने में जब क्रमशः और धीरे धीरे अभ्यास होता है तो कुछ आश्चर्य नहीं होता। साधना की उच्च श्रेणी पर पहुँच कर अभ्यासी को वह योग्यता प्राप्त हो जाती है कि सचमुच शरीर के दायरे से ऊपर उठ जाय और उन वस्तुओं को देखने लगे जो इस शरीर मे रहते हुए नहीं देखी जा सकती थीं। उस दशा में अभ्यासी शरीर से सम्बन्ध तोड़ नहीं देता। जैसे कोई आदमी कमरे की खिड़की में से गरदन बाहर निकाल कर देखता है कि बाहर कहां क्या होता है और फिर इच्छानुसार सिर को भीतर कर लेता है वही बात इस दशा में भी होती है। नये दीक्षितों को हम अभी यह अनुभव जगाने की सम्मति नहीं देते, ऐसा करना क्रम को उल्लंघन करना होगा। समयानुसार हम परोक्ष दर्शन की भी शिक्षा देंगे, इस समय तो इसका थोड़ा सा उल्लेख इसलिए करना पड़ा है कि कदाचित किसी को स्वयमेव ऐसी चेतना आने लगे तो उसे घबराना या डरना न चाहिए।

जीव के अमर होने के सिद्धान्त को अधिकांश लोग विश्वास के आधार पर स्वीकार कर लेते है। उन्हें यह जानना चाहिए कि यह बात कोई कपोल कल्पित नहीं है, वरन् स्वयं जीव द्वारा अनुभव में आकर सिद्ध हो सकती है। तुम ध्यानावस्थित होकर ऐसी कल्पना करो कि 'हम' मर गये। कहने सुनने में यह बात साधारण सी मालूम पड़ती है। जो साधक पिछले पृष्ठों में दी हुई लम्बी चौड़ी भावनाओं का अभ्यास करते हैं उनके लिए यह छोटी कल्पना कुछ कठिन प्रतीत न होनी चाहिए। पर जब तुम इसे करने बैठोगे तो यही कहोगे कि यह नहीं हो सकती। ऐसी कल्पना करना असंभव है। तुम शरीर के मर जाने को कल्पना कर सकते हो पर साथ ही यह भी पता रहेगा कि तुम्हारा

'मैं' नहीं मरा है वरन वह दूर खड़ा हुआ मृत शरीर को देख रहा है। इस प्रकार पता चलेगा कि किसी भी प्रकार अपने 'मैं' के मर जाने की कल्पना नहीं कर सकते। विचार बुद्धि हठ करती है कि आत्मा मर नहीं सकता। उसे जीव के अमरत्व पर पूर्ण विश्वास है और चाहे जितना प्रयत्न किया जाय वह अपने अनुभव के त्याग के लिए उद्यत नहीं होती। कोई आघात लग कर, या क्लोरोफार्म सूंघ कर बेहोश हो जाने पर भी 'मैं' जागता रहता है। यदि ऐसा न होता तो उसे जागने पर यह ज्ञान कैसे होता कि मैं इतनी देर बेहोश पड़ा रहा हूँ। बेहोशी और निद्रा की कल्पना हो सकती है पर जब 'मैं' की मृत्यु का प्रश्न आता है तो चारों ओर अस्वीकृति की ही प्रतिध्वनि गूंजती है। कितने हर्ष की बात है कि जीव अपने अमर और अखण्ड होने के प्रमाण अपने ही अन्दर दृढ़ता पूर्वक धारण किये हुए है।

अपने को अमर, अखंड, अविनाशी और भौतिक वेदना से से परे समझना, आत्मस्वरूप दर्शन का आवश्यक अंग है। इसकी अनुभूति हुए बिना सच्चा आत्म विश्वास नहीं होता और जीव बराबर अपनी चिरसंचित तुच्छता की भूमिका में फिसल पड़ता है। जिससे अभ्यास का सारा प्रयत्न गुड़ गोबर हो जाता है। इसलिए एकाग्रता पूर्वक अच्छी तरह अनुभव करो कि मैं अविनाशी हूँ। अच्छी तरह इसे अनुभव में लाये बिना आगे मत बढ़ो जब आगे बढ़ने लगो तब भी कभी कभी लौट कर अपने इस स्वरूप का फिर परीक्षण कर लो। यह भावना आत्म स्वरूप के साक्षात्कार में बड़ी सहायता देगा। आगे कुछ परीक्षण बताये जाते हैं। जिनके द्वारा अपने "अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतःस्थाणु रचलोऽयं सनातनः।" का अनुभव कर सको।

ध्यानावस्था में आत्म स्वरूप को देह से अलग करो और क्रमशः उसे आकाश हवा अग्नि पानी पृथ्वी की परीक्षा में से निकलते हुए देखो। कल्पना करो कि मेरी देह की बाधा हट गई है और अब मैं स्वतन्त्र हो गया हूं। अब तुम आकाश में इच्छा पूर्वक ऊंचे नीचे पखेरुओं की तरह जहां चाहे उड़ सकते हो। हवा के वेग से गति में कुछ भी बाधा नहीं पड़ती और न उसके द्वारा जीव कुछ सूखता ही है। कल्पना करो कि बड़ी भारी आग की ज्वाला जल रही है और तुम उसमें होकर मजे में निकल जाते हो और कुछ भी कष्ट नहीं होता है। भला जीव को आग कैसे जला सकती है। उसकी गर्मी की पहुँच तो सिर्फ शरीर तक ही थी। इसी प्रकार पानी और पृथ्वी के भीतर भी जीव की पहुँच वैसी ही है जैसे आकाश में। अर्थात कोई भी तत्व तुम्हें छू नहीं सकता और तुम्हारी स्वतन्त्रता में तनिक भी बाधा नहीं पहुंचा सकता।

इस भावना से आत्मा का स्थान शरीर से ही ऊंचा ही नहीं होता बल्कि उसको प्रभावित करने वाले पंच तत्वों से भी ऊपर उठता है। जीव देखने लगता है कि मैं देह ही नहीं वरन् उसके निर्माता पंच तत्वों से भी ऊपर हूँ। अनुभव की इस चेतना में प्रवेश करते ही तुम्हें प्रतीत होगा कि मेरा नया जन्म हुआ है। नवीन शक्ति का संचार अपने अन्दर होता हुआ प्रतीत होगा। और ऐसा भान होगा कि पुराने वस्त्रों की तरह भय का आवरण ऊपर से हटा दिया गया है। अब ऐसा विश्वास हो जायगा कि जिन वस्तुओं से मैं अब तक डरा करता था वे मुझे कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकतीं। शरीर तक ही उनकी गति है। सो ज्ञान और इच्छा शक्ति द्वारा शरीर से भी इन भयों को दूर हटाया जा सकता है।

बार बार समझ लो प्राथमिक शिक्षा का बीज मंत्र "मैं" है। इसका पूरा अनुभव करने के बाद ही आध्यात्म उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकोगे। तुम्हें अनुभव करना होगा-मेरी सत्ता शरीर से भिन्न है। अपने को सूर्य के समान शक्ति का एक महान केन्द्र देखना होगा जिसके इर्द-गिर्द अपना संसार घूम रहा है। इससे नवीन शक्ति आवेगी। जिसे तुम्हारे साथी प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे। तुम स्वयं स्वीकार करोगे अब मैं सुदृढ़ हूँ और जीवन की आंधियां मुझे विचलित नहीं कर सकतीं। केवल इतना ही नहीं इससे भी आगे है। अपनी उन्नति के आत्मिक विकाश के साथ उस योग्यता को प्राप्त होता हुआ भी देखोगे जिसके द्वारा जीवन की आंधियों को शान्त किया जाता है और उन पर शासन किया जाता है।

आत्म ज्ञानी दुनियां के भारी कष्टों के दशा में भी हंसता रहेगा और अपनी भुजा उठा कर कष्टों से कहेगा—"जाओ, चले जाओ! जिस अन्धकार से तुम उत्पन्न हुए हो उसी में विलीन हो जाओ।" धन्य है वह, जिसने 'मैं' के बीज मंत्र को सिद्ध कर लिया है।

जिज्ञासुओं! प्रथम शिक्षा का अभ्यास करने के लिए अब दम्भ से अलग हो जाओ। अपनी मन्द गति देखो तो उतावले मत होओ। आगे चलने में यदि पांव पीछे फिसल पड़ें तो निराश मत होओ। आगे चल कर तुम्हें दूना लाभ मिल जायगा। सिद्धि और सफलता तुम्हारे लिए हैं, वह तो प्राप्त होगी ही है। बढ़ो, शान्ति के साथ थोड़ा प्रयत्न करो।

इस पाठ के मन्त्र

—मैं, प्रतिभा और शक्ति का केन्द्र हूँ।

—मैं विचार और चेतना का केन्द्र हूँ।

—मेरा संसार मेरे चारों ओर घूम रहा है।

—मैं, शरीर से भिन्न हूँ।

—मैं, अविनाशी हूँ, मेरा नाश नहीं हो सकता।

—मैं, अखण्ड हूं, मेरी क्षति नहीं हो सकती।

———

तीसरा अध्याय

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मनः ।
मनतस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ गीता ३ । ४२

शरीर से इन्द्रियां परे (सूक्ष्म) हैं । इन्द्रियों से परे मन है । और मन से परे वह आत्मा है ।

आत्मा तक पहुंचने के लिए क्रमशः सीढ़ियां चढ़नी पड़ेंगी । पिछले अध्याय में आत्मा के शरीर और इन्द्रियों से ऊपर अनुभव करने के साधन बताए गये थे । इस अध्याय में मन का स्वरूप समझने और उससे ऊपर आत्मा को सिद्ध करने का हमारा प्रयत्न होगा । प्राचीन दर्शन शास्त्र मन और बुद्धि को अलग अलग गिनता है । आधुनिक दर्शन शास्त्र मन को ही सर्वोच्च श्रेणी को बुद्धि मानता है । इस बहस में आपको कोई खास दिलचस्पी लेने की जरूरत नहीं है । दोनों का मत भेद इतना बारीक है कि मोटी निगाह से वह कुछ भी प्रतीत नहीं होता । दोनों ही मन तथा बुद्धि को मानते हैं । दोनों स्थूल मन से बुद्धि को सूक्ष्म मानते हैं । हम पाठकों की सुविधा के लिए बुद्धि को भी मन की ही उन्नत कोटि में गिन लेंगे और आगे का अभ्यास आरम्भ करावेंगे ।

अब तक तुमने यह पहिचाना है कि हमारे भौतिक आवरण क्या हैं ? अब इस पाठ में यह बताने का प्रयत्न किया जायगा कि

असली अहम् "मैं" से कितना दूर है। यह सूक्ष्म परीक्षण है भौतिक आवरणों का अनुभव जितनी आसानी से हो जाता उतना सूक्ष्म शरीर में से अपने वास्तविक अहम् को पृथक कर सकना आसान नहीं है। इसके लिए कुछ अधिक योग्यता और ऊँची चेतना होनी चाहिए। भौतिक पदार्थों से पृथकत्व का अनुभव हो जाने पर भी अहम् के साथ लिपटा हुआ सूक्ष्म शरीर गड़बड़ में डाल देता है। कई लोग मन को ही आत्मा समझने लगते हैं। आगे हम मन के रूप की व्याख्या न करेंगे और ऐसे उपाय बतावेंगे जिससे स्थूल शरीर और भद्दे मैं के टुकड़े टुकड़े कर सको और उसमें से तलाश कर सको कि इनमें 'अहम' कौनसा है? और उससे भिन्न वस्तुऐं कौनसी हैं? इस विश्लेषण को तुम मन के द्वारा कर सकते हो और उसे इसके लिए मजबूर कर सकते हो कि इन प्रश्नों का सही उत्तर दें।

शरीर और आत्मा के बीच की चेतना मन है। साधकों की सुविधा के लिए मन को तीन विभागों में बांटा जाता है। मन के पहिले भाग का नाम "प्रवृत मानस" है। यह पशु पक्षी आदि अविकसित जीवों और मनुष्यों में समान रूप से पाया जाता है। गुप्त मन और सुप्त मानस भी उसे कहते हैं। शरीर के स्वाभाविक जीवन को बनाने रखना इसी के हाथ में है। हमारी जानकारी के बिना भी शरीर का व्यापार अपने आप चलता रहता है। भोजन की पाचन क्रिया, रक्त का घूमना, क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, वीर्य का बनना, मलत्याग, श्वांस प्रश्वांस, पलकें खुलना बन्द होना आदि कार्य अपने आप होते रहते हैं। आदतें पड़ जाने का कार्य इसी मन के द्वारा होता है। यह मन देर में किसी बात को ग्रहण करता है पर जिसे ग्रहण कर लेता है उसे आसानी से छोड़ता नहीं

हमारे पूर्वजों के अनुभव और हमारे वे अनुभव जो पाशविक जीवन से उठकर इस अवस्था में आने तक प्राप्त हुए हैं, इसी में जमा है। मनुष्य एक अल्प बुद्धि साधारण प्राणी था उस समय की ईर्षा, द्वेष, युद्ध प्रवृत्ति, स्वार्थ-चिन्ता, आदि साधारण वृत्तियाँ इसी के एक कोने में पड़ी रहती हैं। पिछले अनेक जन्मों के नीच स्वभाव जिन्हें प्रबल प्रयत्नों द्वारा काटा नहीं गया है इसी विभाग में इकट्ठे रहते हैं। यह एक अद्भुत अजायब घर है जिसमें सभी तरह की चीजें जमा हैं। कुछ अच्छी और बहुमूल्य हैं तो कुछ सड़ी गली भद्दी तथा भयानक भी हैं। जंगली मनुष्यों पशुओं तथा दुष्टों में जो लोभ, हिंसा क्रूरता, आवेश अधीरता आदि वृत्तियां होती हैं वह भी सूक्ष्म रूप से इसमें जमा है। यह बात दूसरी है कि कहीं उच्चमन द्वारा पूरी तरह से वे वश में रखी जाती हैं कहीं कम। राजस और तामसी लालसायें इसी मन से सम्बन्ध रखती हैं। इन्द्रियों के भोग, घमन्ड, क्रोध, भूख, प्यास, मैथुनेच्छा, निद्रा आदि इसी प्रवृत्त मानस के रूप हैं।

प्रवृत्तमन से ऊपर दूसरा मन है जिसे "प्रबुद्ध मानस" कहना चाहिए। इस पुस्तक को पढ़ते समय तुम उसी मन का उपयोग कर रहे हो। इसका काम सोचना, विचारना, विवेचना करना तुलना करना, कल्पना, तर्क तथा निर्णय आदि करना है हाजिर जवाबी, बुद्धिमत्ता, चतुरता, अनुभव, स्थिति का परीक्षण यह सब प्रबुद्ध मन द्वारा होते हैं याद रखो जैसे प्रवृत्त मानस 'अहम्' नहीं है उसी प्रकार प्रबुद्ध मानस भी वह नहीं है। कुछ देर विचार करके तुम इसे आसानी के साथ "अहम्" से अलग कर सकते हो। इस छोटी सी पुस्तक में बुद्धि के गुण धर्मों का विवेचन नहीं हो सकता, जिन्हें इस विषय का अधिक ज्ञान

प्राप्त करना हो वे मनोविज्ञान के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का मनन करें। इस समय इतना काफी है कि तुम अनुभव कर लो कि प्रबुद्ध-मन भी एक अच्छादन है न कि 'अहम्'।

तीसरे सर्वोच्च मन का नाम 'आध्यात्म मानस' है। इसका विकाश अधिकांश लोगों में नहीं हुआ होता। मेरा विचार है कि तुम में यह कुछ कुछ विकसने लगा है क्यों कि इस पुस्तक को मन लगा कर पढ़ रहे हो और इसमें वर्णित विषय की ओर आकर्षित हो रहे हो। मन के इस विभाग को हम लोग उच्चतम विभाग मानते हैं और आध्यात्मिकता, आत्म-प्रेरणा ईश्वरीय सन्देश, प्रतिभा आदि जानते हैं। उच्च भावनायें मन के इसी भाग में उत्पन्न होकर चेतना में गति करती हैं। प्रेम सहानुभूति, दया, करुणा, न्याय निष्ठा, उदारता, धर्म प्रवृत्ति, सत्य, पवित्रता आत्मीयता आदि समस्त उच्च भावनायें इसी मन से आती हैं। ईश्वर भक्ति इसी मन में उदय होती है। गूढ़-तत्वों का रहस्य इसी के द्वारा जाना जाता है। इस पाठ में जिस विशुद्ध अहम् की अनुभूति के शिक्षण का हम प्रयत्न कर रहे हैं वह इसी 'आध्यात्म मानस' के चेतना क्षेत्र से प्राप्त हो सकेगी। परन्तु भूलिए मत, मन का यह सर्वोच्च भाग भी केवल उपकरण ही है। "अहम्" यह भी नहीं है।

तुम्हें यह भ्रम न करना चाहिए कि हम किसी मन की निन्दा और किसी की स्तुति करते हैं और उन्हें भार या बाधक सिद्ध करते हैं। बात ऐसी नहीं है। सच तो यह है कि मन की सहायता से ही तुम अपनी वास्तविक सत्ता और आत्म ज्ञान के निकट पहुंचे हो, और आगे भी बहुत दूर तक उसकी सहायता से अपना मानसिक विकास कर सकोगे इसलिए मन का

प्रत्येक विभाग अपने स्थान पर बहुत अच्छा है बशर्ते कि उस का ठीक उपयोग किया जाय।

साधारण लोग अब तक मन के नीच भागों का ही उपयोग में लाते हैं। उनके मानस लोक में अभी ऐसे असंख्य गुप्त प्रकट स्थान हैं जिनकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकी है। अतएव मन को कोसने के स्थान पर आचार्य लोग दीक्षितों को सदैव यह उपदेश देते हैं कि उस गुप्त शक्ति को त्याज्य न ठहरा कर ठीक प्रकार से क्रिया शील बनाओ।

यह शिक्षा जो तुम्हें दी जा रही है, मन के द्वारा ही क्रिया रूप में आ सकती है और उसी के द्वारा समझने-धारण करने एवं सफल होने का कार्य हो सकता है। इसलिए हम सीधे तुम्हारे मन से बात कह रहे हैं। उसी से निवेदन कर रहे हैं कि महोदय, अपनी उच्च कक्षा से आने वाले ज्ञान को ग्रहण कीजिये और उसके लिए अपना द्वार खोल दीजिए। हम आपकी बुद्धि से प्रार्थना करते हैं—भगवती, अपना ध्यान उस महातत्व की ओर लगाइये, और सत्य के अनुभवी, अपने अध्यात्मिक मन द्वारा आने वाली दैवी चेतना में कम बाधा दीजिए।

अभ्यास

सुख और शान्ति पूर्वक स्थित होकर आदर के साथ उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए बैठो जो उच्च मन की उच्च कक्षा द्वारा तुम्हें प्राप्त होने को है।

पिछले पाठ में तुमने समझा था कि "मैं" शरीर से परे कोई मानसिक चीज है, जिसमें विचार भावना और वृत्तियां

भरी हुई हैं। अब इससे आगे बढ़ना होगा और अनुभव करना होगा कि यह विचारणीय वस्तुयें आत्मा से भिन्न हैं

विचार करो कि द्वेष, क्रोध, ममता, ईर्षा, घृणा, उन्नति आदि की असंख्य भावनाएं मस्तिष्क में आती रहती है। उन में से हर एक को तुम अलग कर सकते हो, जांच कर सकते हो, विचार सकते हो, खण्डित कर सकते हो. उनके उदय वेग और अन्त को भी जान सकते हो। कुछ दिन के अभ्यास से अपने विचारों की परीक्षा करने का ऐसा अभ्यास प्राप्त कर लोगे मानो अपने किसी दूसरे मित्र की भावनाओं के उदय वेग और अन्त का परीक्षण कर रहे हो। यह सब भावनाऐं तुम्हारे चिन्तन केन्द्र में मिलेंगी। उनके स्वरूप का अनुभव कर सकते हो और उन्हें टटोल तथा हिला, झुला कर देख सकते हो। अनुभव करो कि यह भावनाऐं तुम नहीं हो। यह केवल ऐसी वस्तुऐं हैं जिन्हें तुम मन के थैले में लादे फिरते हो। अब उन्हें त्याग कर आत्म स्वरूप की कल्पना करो। ऐसी भावना सरलता पूर्वक कर सकोगे।

उन मानसिक वस्तुओं को पृथक करके तुम उन पर विचार कर रहे हो, इसी से सिद्ध होता है कि वह वस्तुऐं तुम से पृथक हैं यह पृथकत्व की भावना अभ्यास द्वारा थोड़े समय बाद लगातार बढ़ती जायगी और शीघ्र ही एक महान आकार में प्रकट होगी।

यह मत समझिए कि हम इस शिक्षा द्वारा यह बता रहे हैं कि भावनाएं कैसे त्याग करें। यदि तुम इसी शिक्षा की सहायता से दुर्वृत्तियों को त्याग सकने की क्षमता प्राप्त कर सको तो बहुत प्रसन्नता की बात है। पर हमारा यह मन्तव्य नहीं है। हम इस समय तो यही सलाह देना चाहते हैं कि अपनी बुरी

भलो सब प्रवृत्तियों को जहाँ की तहाँ रहने दो और ऐसा अनुभव करो—"अहम्" इन सब से परे एवं स्वतन्त्र है। जब तुम 'अहम्' के महान स्वरूप का अनुभव कर लो। तब लौट आओ और इन वृत्तियों को जो अब तक तुम्हें अपनी चाकर बनाये हुए थी मालिक की भांति उचित उपयोग में लाओ। अपनी इन वृत्तियों को अहम् से परे के अनुभव में पटकते समय डरो मत। अभ्यास समाप्त करने के बाद फिर वापिस लौट आओगे और उनमें से अच्छी वृत्तियों की इच्छानुसार काम में ला सकोगे। 'अमुक वृत्ति ने मुझे बहुत अधिक बांध लिया है उससे कैसे छूट सकता हूँ इस प्रकार को चिन्ता मत करो। यह चीजें बाहर की है। इसके बन्धन में बंधने से पहले 'अहम' था और बाद में भी बना रहेगा। जब अपने को पृथक् करके उनका परीक्षण कर सकते हो तो क्या कारण है कि एक ही झटके में उठाकर अलग नहीं फेंक सकोगे? ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुम इस बात का अनुभव और विश्वास कर रहे हो कि "मैं" बुद्धि और इन शक्तियों का उपयोग कर रहा हूं। यही "मैं" जो शक्तियों को उपकरण मानता है, मन का स्वामी "अहम्" है।

उच्च आध्यात्मिक मन से आई प्रेरणा भी इसी प्रकार अध्ययन की जा सकती है। इसलिए उन्हें भी अहम से भिन्न माना जायगा। आप शंका करेंगे कि उच्च आध्यात्मिक प्रेरणा का उपयोग उस प्रकार नहीं किया जा सकता। इसलिए सम्भव है वे प्रेरणाएं अहम वस्तुएं हो? आज हमें तुमसे इस विषय पर कोई विवाद नहीं करना है क्यों कि तुम आध्यात्मिक मन की थोड़ी बहुत जानकारी को छोड़ कर अभी उसके सम्बन्ध में और कुछ नहीं जानते। साधारण मन के मुकाबिले में वह मन ईश्वरीय

भूमिका के समान है। जिन तत्व दर्शियों ने अहम-ज्योति का साक्षात्कार कर लिया है और जो विकाश की उच्च अत्युच्च सीमा तक पहुँच गये हैं वे योगी बतलाते हैं कि अहम अध्यात्मिक मन से ऊपर रहता है और उसको अपनी ज्योति से प्रकाशित करता है जैसे पानी पर पड़ता हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य जैसा ही मालूम पड़ता है। परन्तु सिद्धों का अनुभव है कि वह केवल धुंधली तसवीर मात्र है। चमकता हुआ आध्यात्मिक मन यदि प्रकाश बिम्ब है तो 'अहम्' अखण्ड ज्योति है। उस उच्च मन में होता हुआ आत्मिक प्रकाश आता है इसी से वह इतना प्रकाश मय प्रतीत होता है। ऐसी दशा में उसे ही अहम्' मान लेने का भ्रम हो जाता है। असल में वह भी 'अहम्' है नहीं। 'अहम्, उस प्रकाश मणि के समान है जो स्वयं सदैव समान रूप से प्रकाशित रहती है किन्तु कपड़ों से ढकी रहने के कारण अपना प्रकाश बाहर लाने में असमर्थ होती है। यह कपड़े जैसे जैसे हटते जाते हैं वैसे ही वैसे प्रकाश अधिक स्पष्ट होता जाता है फिर भी कपड़ों के हटने या उनके और अधिक मात्रा में पड़ जाने के कारण मणि के स्वरूप में कोई परिवर्तित नहीं होता।

इस चेतना में ले जाने का इतनी ही अभिप्राय: है कि 'अहम्' की सर्वोच्च भावना में जाग कर तुम एक समुन्नत आत्मा बन जाओ और अपने उप करणों का ठीक उपयोग करने लगो। जो पुराने, अनावश्यक, रद्दी और हानि कर परिधान हैं उन्हें उतार कर फेंक सको और नवीन एवं अद्भुत क्रियाशील औजारों को उठाकर उनके द्वारा अपने सामने के कार्यों को सुन्दरता और सुगमता के साथ पूरा कर सको अपने को सफल एवं विजयी घोषित कर सको।

इतना अभ्यास और अनुभव कर लेने के बाद तुम पूछोगे कि 'अब क्या बचा जिसे 'अहम्' से भिन्न न गिनें? इसके उत्तर में हमें कहना है कि 'विशुद्ध आत्मा।' इसको प्रमाण यह है कि- अपने 'अहम्' को शरीर, मन आदि अपनी सब वस्तुओं से पृथक करने का प्रयत्न करो। छोटी चीजों से लेकर उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म, उससे परे, २ से परे वस्तुओं को छोड़ते छोड़ते विशुद्ध आत्मा तक पहुँच जाओगे। क्या अब इससे भी परे कुछ हो सकता है? कुछ नहीं। विचार करने वाला, परीक्षा करने वाला और परीक्षा की वस्तु दोनों एक वस्तु नहीं हो सकते। सूर्य अपनी किरणों द्वारा अपने ही ऊपर नहीं चमक सकता। तुम विचार और जाँच की वस्तु नहीं हो। फिर भी तुम्हारी चेतना कहती है 'मैं हूँ' यही आत्मा के अस्तित्व का प्रमाण है। अपनी कल्पना शक्ति, स्वतन्त्रता शक्ति लेकर इस 'अहम्' को पृथक करने का प्रयत्न कर लीजिये परन्तु फिर भी हार जाओगे और उससे आगे नहीं बढ़ सकोगे। अपने को मरा हुआ नहीं मान सकते। यही विशुद्ध आत्मा, अविनाशी, अविकारी, ईश्वरीय समुद्र की बिन्दु, परमात्मा की किरण है।

हे साधक! अपनी आत्मा का अनुभव प्राप्त करने में सफल होओ और समझो कि तुम सोते हुए देवता हो। अपने भीतर प्रकृति की महान् सत्ता धारण किये हुए हो। जो कार्य रूप में परिणित होने के लिए हाथ बांध कर खड़ी हुई आज्ञा मांग रही है। इस स्थान तक पहुँचने में बहुत कुछ समय लगेगा। पहली मंजिल तक पहुंचने में भी कुछ देर लगेगी परन्तु आध्यात्मिक विकाश की चेतना में प्रवेश करते ही आंखें खुल जायंगी। आगे का प्रत्येक कदम साफ होता जायगा और प्रकाश प्रकट होता जायगा।

इस पुस्तक के अगले अध्याय में हम यह बतावेंगे कि आपकी विशुद्ध आत्मा भी स्वतन्त्र नहीं वरन् परमात्मा का ही एक अंश है और उसी में किस प्रकार ओत प्रोत हो रही है ? परन्तु उस ज्ञान को ग्रहण करने मे पूर्व तुम्हें अपने भीतर 'अहम्' की चेतना जगा लेनी पड़ेगी। हमारी इस शिक्षा को शब्द–शब्द और केवल शब्द समझ कर उपेक्षित मत करो, इस निर्बल व्याख्या को तुच्छ समझ कर तिरस्कृत मत करो। यह एक बहुत सच्ची बात बताई जा रही है। तुम्हारी आत्मा इन पंक्तियों को पढ़ते समय अध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने की अभिलाषा कर रही है। उसका नेतृत्व ग्रहण करो और आगे को कदम उठाओ।

अब तक बताई हुई मानसिक कसरतों का अभ्यास कर लेने के बाद "अहम्" से भिन्न पदार्थों का तुम्हें पूरा निश्चय हो जायगा। इस सत्य को ग्रहण कर लेने के बाद अपने को मन और वृत्तियों का स्वामी अनुभव करोगे और तब उन सब चीजों को पूरे बल और प्रभाव के साथ काम में लाने की सामर्थ प्राप्त कर लोगे।

इस महान् तत्व की व्याख्या में हमारे यह विचार और शब्दावली हीन, शिथिल और सस्ते प्रतीत होते होंगे। वह विषय अनिर्वचनीय है। वाणी की गति वहां तक नहीं है। गुड़ का मिठास जबानी जमा खर्च द्वारा नहीं समझाया जा सकता। हमारा प्रयत्न केवल इतना ही है कि तुम ध्यान और दिलचस्पी की तरफ झुक पड़ो और इन कुछ मानसिक कसरतों को करने के अभ्यास में लग जाओ। ऐसा करने से मन वास्तविकता का प्रमाण पाता जायगा और आत्म स्वरूप में दृढ़ता होती जायगी। जब तक स्वयं अनुभव न हो जाय तब तक ज्ञान, ज्ञान नहीं है।

एक बार जब तुम्हें उस सत्य के दर्शन हो जायंगे तो वह फिर दृष्टि से ओझल नहीं हो सकेगा और कोई वाद विवाद उस पर अविश्वास नहीं करा सकेगा।

अब तुम्हें अपने को दास नहीं, स्वामी मानना पड़ेगा। तुम शासक हो और मन आज्ञा पालक। मन द्वारा जो अत्याचार अब तक तुम्हारे ऊपर हो रहे थे उन सब को फाड़ फाड़कर फेंक दो और अपने को उनसे मुक्त हुआ समझो। तुम्हें आज राज्य सिंहासन सौंपा जा रहा है अपने को राजा अनुभव करो। दृढ़ता पूर्वक आज्ञा दो कि स्वभाव विचार, संकल्प, बुद्धि, कामनाएँ समस्त कर्मचारी शासन को स्वीकार करें और नये संधि-पत्र पर दस्तखत करें कि हम वफादार नौकर की तरह अपने राजा की आज्ञा मानेंगे और राज्य प्रबन्ध को सर्वोच्च एवं सुन्दरतम बनाने में रत्ती भर भी प्रमाद न करेंगे।

लोग समझते हैं कि मन ने हमें ऐसी स्थिति में डाल दिया है कि हमारी वृत्तियां हमें बुरी तरह कांटों में घसीटे फिरती हैं और तरह तरह के त्रास देकर दुखी बनाती हैं। साधक इन दुखों से छुटकारा पा जावेंगे। क्यों कि वह उन सब उद्गमों से परिचित है और वहां काबू पाने की योग्यता सम्पादन कर चुके हैं। किसी बड़े मिल में सैकड़ों घोड़ों की ताकत से चलने वाला इंजन और उसके द्वारा संचालित होने वाली सैकड़ों मशीनें तथा उनके असंख्य कल पुर्जे किसी अनाड़ी को डरा देंगे। वह उस घर में घुसते ही हड़बड़ा जायगा किसी पुर्जे में धोती फँस गई तो उसे छुड़ा सकने में असमर्थ होगा और अज्ञान के कारण बड़ा त्रास पावेगा। किन्तु वह इंजीनियर जो मशीनों के पुर्जे २ से परिचित है और इंजन चलाने के सारे सिद्धान्त को भली भांति समझे हुये है उस कारखाने में घुमते

हुये तनिक भी न घबरावेगा। और गर्व के साथ उन दैत्याकार यन्त्रों पर शासन करता रहेगा जैसा एक महावत हाथी पर और सपेरा भयंकर विषधरों पर करता है। उसे इतने बड़े यन्त्रालय का उत्तर दायित्व लेते हुये भय नहीं, अभिमान होगा। वह हर्ष और प्रसन्नता पूर्वक शाम को मिल मालिक को हिसाब देगा, बढ़िया माल की इतनी राशि उसने थोड़े समय में ही तैयार कर दी है। उसकी फूली हुई छाती पर से सफलता का गर्व मानो टपका पड़ रहा होता है। जिसने अपने 'अहम्' और वृत्तियों का ठीक ठीक स्वरूप और सम्बन्ध जान लिया है वह ऐसा ही कुशल इन्जीनियर-यन्त्र संचालक है। अधिक दिनों का अभ्यास और भी अद्भुत शक्ति देता है। जागृत मन ही नहीं उस समय प्रवृत मन, गुप्त मानस भी शिक्षित हो गया होता है और वह जो आज्ञा प्राप्त करता है उसे पूरा करने के लिए चुप चाप तब भी काम किया करता जब हम दूसरे कामों में लगे होते हैं या सोये होते हैं। गुप्त मन जब उन कार्यों को पूरा करके सामने रखता है। तब नया साधक चौंकता है कि यह अदृष्ट सहायता है-यह अलौकिक करामात है। परन्तु योगी उन्हें समझाता है कि यह तुम्हारी अपनी अपरिचित योग्यता है इससे असंख्य गुनी प्रतिभा तो अभी तुम में सोई पड़ी है।

सन्तोष और धैर्य धारण करो। कार्य कठिन है पर इसके द्वारा जो पुरुष्कार मिलना है उसका लाभ बड़ा भारी है। यदि वर्षों के कठिन अभ्यास और मनन द्वारा भी तुम अपने पद, सत्ता, महत्व, गौरव, शक्ति की चेतना प्राप्त कर सको तब भी वह करना ही चाहिए। यदि तुम इन विचारों में हम से सहमत हो तो केवल पढ़ कर ही सन्तुष्ट मत हो जाओ। अध्ययन करो, मनन करो, आशा करो, साहस करो और सावधानी तथा गम्भीरता के साथ इन साधन पथ की ओर चल पड़ो।

इस पाठ का बीज मन्त्र

—"मैं" सत्ता हूँ। मन मेरे प्रकट होने का उपकरण है।
—"मैं" मन से भिन्न हूँ। उसकी सत्ता पर आश्रित नहीं हूँ।
—"मैं" मन का सेवक नहीं, शासक हूं।
—"मैं" बुद्धि, स्वभाव, इच्छा और अन्य समस्त मानसिक उपकरणों को अपने से अलग कर सकता हूँ। तब जो कुछ शेष रह जाता है, वह "मैं" हूँ।
—"मैं" अजर अमर, अविकारी और एक रस हूँ।

—'मैं हूँ'—

चौथा अध्याय

ईशावास्य मिदं सर्वं य त्किञ्च जगत्यां जगत् ।

संसार में जितना भी कुछ है वह सब ईश्वर से ओत प्रोत है

पिछले अध्यायों में आत्म स्वरूप और उसके आवरणों से जिज्ञासुओं को परिचित कराने का प्रयत्न किया गया है। इस अध्याय में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध बताने का प्रयत्न किया जायगा। अब तक जिज्ञासु 'अहम्' का जो रूप समझ सके हैं वास्तव में वह उससे कहीं अधिक है। विश्व व्यापी आत्मा परमात्मा, महत्तत्व, परमेश्वर का ही वह अंश है। तत्वतः उसमें कोई भिन्नता नहीं है।

तुम्हें अब इस तरह अनुभव करना चाहिए कि "मैं" अब तक अपने को जितना समझता हूँ उससे कई गुना बड़ा हूँ। 'अहम' की सीमा समस्त ब्रह्माण्डों के छोर तक पहुंचती है वह परमात्म शक्ति की सत्ता में समाया हुआ है और उसी से इस प्रकार पोषण ले रहा है जैसा गर्भस्थ बालक अपनी माता के शरीर से। वह परमात्मा का निज तत्व है। तुम्हें आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव करना होगा और क्रमशः अपनी अहंता को बढ़ाकर अत्यन्त महान् कर देने को अभ्यास में लाना होगा। तब उस चेतना में जग सकोगे जहां पहुँच कर योग के आचार्य कहते हैं 'सोऽहम्'।

आइये, अब इसी अभ्यास की यात्रा आरम्भ करें। अपने चारों ओर दूर तक नजर फैलाओ और अन्तर नेत्रों से जितनी दूरी तक के पदार्थों को देख सकते हो देखो तुम्हें प्रतीत होगा कि एक महान विश्व चारों ओर बहुत दूर-बहुत दूर-तक फैला हुआ है। यह विश्व केवल ऐसा ही नहीं है जैसा मोटे तौर पर समझा जाता है, वरन् यह एक चेतना का समुद्र है। प्रत्येक परमाणु आकाश राशि ईथर तत्व में बराबर गति करता हुआ आगे को बह रहा है। शरीर के तत्व हर घड़ी बदल रहे हैं। आज जो रासायनिक पदार्थ, एक पदार्थ-एक वनस्पति में हैं वह कल भोजन द्वारा हमारे शरीर में पहुंचेगा और परसों मल रूप में निकल कर अन्य जीवों के शरीर का अंग बन जायगा। डाक्टर बताते हैं कि शारीरिक कोष हर घड़ी बदल रहे हैं, पुराने नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये आ जाते हैं। यद्यपि देखने में शरीर ज्यों का त्यों रहता है पर कुछ ही समय में वह बिलकुल बदल जाता है और पुराने शरीर का एक कण भी बाकी नहीं बचता। वायु जल और भोजन द्वारा नवीन पदार्थ शरीर में प्रवेश करते हैं और श्वास क्रिया तथा मल त्याग के रूप में बाहर निकल जाते हैं भौतिक पदार्थ बराबर अपनी धारा में बह रहे हैं। नदी तल में पड़े हुए कछुए के ऊपर होकर नवीन जल धारा बहती रहती है तथापि वह केवल इतना ही अनुभव करता है कि पानी मुझे घेरे हुए है और मैं पानी में पड़ा हुआ हूँ। हम लोग भी उस निरंतर बहने वाली प्रकृति धारा से भली भांति परिचित नहीं होते तथापि वह पल भर भी ठहरे बिना बराबर गति करती रहती है। यह मनुष्य शरीर तक ही सीमित नहीं वरन् अन्य जीवधारियों, वनस्पतियों और जिन्हें हम जड़ मानते हैं उन सब पदार्थों में होती हुई आगे बढ़ती रहती है। हर चीज हर घड़ी बदल रही है। कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय इस प्रवाह की एक

बूंद को क्षण भर भी रोक कर नहीं रखा जा सकता यह भौतिक सत्य आध्यात्मिक सत्य भी है। फकीर गाते हैं "यह दुनिया आना जानी है।"

भौतिक द्रव्य प्रवाह को तुम समझ गये होगे। यही बात मानसिक चेतनाओं की है विचार धाराएं शब्दावलियां संकल्प आदि का प्रवाह भी ठीक इसी प्रकार जारी है। जो बातें एक सोचता है वही बात दूसरे के मन में उठने लगती है। दुराचार के अड्डों का वातावरण ऐसा घृणित होता है कि वहां जाते ही नये आदमी का दम घुटने लगता है। शब्द धारा अब वैज्ञानिक यंत्रों के वश में आ गई है। रेडियो-बेतार का तार शब्द लहरों का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मस्तिष्क में आने जाने वाले विचारों का अब फोटो लिये जाने लगे हैं जिससे यह पता चल जाता है कि अमुक आदमी किन विचारों को ग्रहण कर रहा है और कैसे विचार छोड़ रहा है। बादलों की तरह विचार प्रवाह आकाश में मंड़राता रहता है और लोगों की आकर्षण शक्ति द्वारा खींचा व फेंका जाता रहता है। यह विज्ञान बड़ा महत्व पूर्ण और विस्तृत है इस छोटी पुस्तक में उसका वर्णन कठिन है।

मन के तीनों अंग प्रवृत्त मानस, प्रवुद्ध मानस-आध्यात्मिक मानस भी अपने स्वतन्त्र प्रवाह रखते हैं। अर्थात् यों समझना चाहिए कि 'नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽयं सनातन।' आत्मा को छोड़कर शेष संपूर्ण शारीरिक और मानसिक परमाणु गति शील हैं। यह सब वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थानों को चलती रहती हैं। जिस प्रकार शरीर के पुराने तत्व आगे बढ़ते और नये आते रहते हैं उसी प्रकार मानसिक पदार्थों के बारे में भी समझना चाहिए। उस दिन आपका निश्चय था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहूंगा, आज विषय भोगों से नहीं अघाते, उस दिन निश्चय था

अमुक व्यक्ति की जान लेकर अपना बदला चुकाऊंगा आज उसके मित्र बने हुए हैं, उस दिन रो रहे थे कि किसी भी प्रकार धन कमाना चाहिए आज सब कुछ त्याग कर सन्यासी हो रहे हैं, ऐसे असंख्य परिवर्तन होते रहते हैं। क्यों? इसलिए कि पुराने विचार उड़ गये और नये उनके स्थान पर आ गये।

विश्व की दृश्य अदृश्य सभी वस्तुओं की गति शीलता की धारणा, अनुभूति और निष्ठा यह विश्वास करा सकती हैं कि संपूर्ण संसार एक है। एकता के आधार पर उसका निर्माण है। मेरी अपनी वस्तु कुछ भी नहीं हैं। या संपूर्ण वस्तुएं मेरी हैं। तेज बहती हुई नदी की बीच धार में तुम्हें खड़ा कर दिया जाय और पूछा जाय कि पानी के कितने और और कौन से परिमाणु तुम्हारे हैं? तब क्या उत्तर दोगे?" विचार करोगे कि पानी की धारा बराबर बह रही है। पानी के जो परमाणु इस समय मेरे शरीर को छू रहे हैं पलक मारते मारते बहुत दूर निकल जायंगे; जल धारा बराबर मुझ से छू कर चलती जा रही है तब या तो मैं संपूर्ण जल धारा को अपनी बताऊं या यह कहूँ कि मेरा कुछ भी नहीं है यह विचार कर सकते हो।

संसार, जीवन और शक्ति का समुद्र है। जीव इसमें होकर अपने विकाश के लिए आगे को बढ़ता जाता है और अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुएं लेता और छोड़ता जाता है प्रकृति मृतक नहीं है जिसे हम भौतिक पदार्थ कहते हैं उसके समस्त परमाणु जीवित हैं वे सब शक्ति से उत्तेजित होकर लहलहा, चल, सोच और जी रहे हैं। इसी जीवित समुद्र की सत्ता के कारण हम सब की गतिविधि चल रही है। एक ही तालाब की हम सब मछलियां हैं। विश्व व्यापी शक्ति, चेतना और जीवन के परमाणु विभिन्न अभिमानियों को झंकृत कर रहे हैं।

उपरोक्त अनुभूति आत्मा के उपकरणों और वस्त्रों के विस्तार के लिए काफी है। हमें सोचना चाहिए कि केवल यह सब शरीर मेरे हैं जिनमें एक ही चेतना ओत प्रोत हो रही है। जिन भौतिक वस्तुओं तक तुम अपनापन सीमित रख रहे हो अब उससे बहुत आगे बढ़ना होगा और सोचना होगा कि "इस विश्व सागर की इतनी बूंदे ही मेरी हैं यह मानना भ्रम है। मैं इतना बड़ा वस्त्र पहने हुए हूँ जिसके अंचल मे समस्त संसार ढका हुआ है।" यही आत्म स्वरूप का विस्तार है। इसका अनुभव उस श्रेणी पर ले पहुँचेगा जिस पर पहुंचा हुआ मनुष्य योगी कहलाता है। गीता कहती है।

सर्व भूतस्थ मात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

अर्थात्—सर्व व्यापी अनन्त चेतना में एकी भाव से स्थिति रूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को संपूर्ण भूतों में और संपूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है।

अपने परिधान का विस्तार संपूर्ण जीवों के बाह्य स्वरूपों में आत्मीयता का अनुभव कराता है आत्माओं की आत्माओं में तो आत्मीयता है ही। वे सब आपस में परमात्मा सत्ता द्वारा बंधे हुए हैं। अविकारी आत्माएँ आपस में एक हैं। इस एकता में ईश्वर बिलकुल निकट है। यहां हम परमात्मा के दरबारमें प्रवेश पाने योग्य और उसमें घुल मिल जाने योग्य होते हैं। वह दशा अनिर्वचनीय है। इसी अनिर्वचनीय आनन्द की चेतना में प्रवेश करना समाधि है। और उसका निश्चित परिणाम आजादी, स्वतन्त्रता, स्वराज्य, मुक्ति, मोक्ष होगा।

एकता अनुभव करने का अभ्यास

ध्यानावस्थस्थित होकर भौतिक जीवन प्रवाह पर चित्त जमाओ। अनुभव करो कि समस्त ब्रह्माण्डों में एक ही चेतना शक्ति लहलहा रही है। उसी के विकार भेद मे पंचतत्व निर्मित हुए हैं। इन्द्रियों द्वारा जो विभिन्न प्रकार के सुख दुखमय अनुभव होते हैं वह तत्वों की विभिन्न रासायनिक प्रकृयाएं हैं जो इन्द्रियों के तारों से टकरा कर विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार की झंकारें उत्पन्न करती हैं। समस्त लोकों का मूल शक्ति तत्व एक ही है और उससे मैं भी उसी प्रकार गति प्राप्त कर रहा हूँ जैसे दूसरे। यह एक साझे का कंबल है जिसमें लिपटे हुए हम सब बालक बैठें हैं। इस सचाई को अच्छी तरह कल्पना में लाओ, बुद्धि का ठीक ठीक अनुभव करने समझने और हृदय को स्पष्टतः अनुभव करने दो।

स्थूल भौतिक पदार्थों की एकता का अनुभव करने के बाद सूक्ष्म मानसिक तत्व की एकता की कल्पना करो। यह भी भौतिक द्रव्य की भांति एक ही तत्व है। तुम्हारा मन, महामन की एक बूंद है। जो ज्ञान और विचार मस्तिष्क में भरे हुए हो वह मूलतः सार्व भौम ज्ञान और विचार धारा के कुछ परिमाणु हैं और उन्हें पुस्तकों द्वारा गुरु मुख द्वारा, या ईथर—आकाश में बहने वाली धारा में से प्राप्त किया होता है। यह भी एक अखंड गतिमान् शक्ति है और उसका उपयोग वैसे ही कर रहे हो जैसे नदी में पड़ा हुआ कछुआ अविरल गति से बहते हुए जल परमाणुओं में से कुछ को पीता है और फिर उसी में मूत्र रूप में त्याग देता है। इस सत्य को भी बारबार हृदयंगम करो और अच्छी तरह मानस पटल पर अंकित करलो

अपने शारीरिक और मानसिक वस्त्रों के विस्तार की भावना दृढ़ होते ही संसार तुम में और तुम संसार में हो जाओगे। कोई वस्तु विरानी न मालूम पड़ेगी। यह सब मेरा है या मेरा कुछ भी नहीं इन दोनों वाक्यों में तब तुम्हें कुछ भी अन्तर न मालूम पड़ेगा। वस्त्रों से ऊपर आत्मा को देखो यह नित्य, अदृश्य, अक्षर, अमर, अपरिवर्तनशील और एक रस है। वह जड़, अवकसित, नीच प्राणियों, तारागणों, ग्रहों, समस्त ब्रह्माण्डों को प्रसन्नता और आत्मीयता की दृष्टि से देखता है। विराना, घृणा करने योग्य, सताने के लायक, या छाती से चिपटा कर रखने के लायक कोई पदार्थ वह नहीं देखता। अपने घर और पक्षियों के घोंसले के महत्व में उसे तनिक भी अन्तर नहीं दीखता। ऐसी उच्च कक्षा का प्राप्त हो जाना केवल आध्यात्मिक उन्नति और ईश्वर के लिए ही नहीं वरन् सांसारिक लाभ के लिए भी आवश्यक है। इस ऊंचे टीले पर खड़ा होकर आदमी संसार का सच्चा स्वरूप देख सकता है और यह जान सकता है कि किस स्थिति में किससे क्या बर्ताव करना चाहिए। उसे सद्गुणों का पुंज, उचित क्रिया कुशलता और सदाचार सीखने नहीं पड़ते वरन् केवल यही चीजें उसके पास शेष रह जाती हैं और वे बुरे स्वभाव न जानें कहां विलीन हो जाते हैं जो जीवन को दुखमय बनाये रहते हैं।

यहां पहुंचा हुआ स्थिति प्रज्ञ देखता है कि सब अविनाशी आत्माएं यद्यपि इस समय स्वतन्त्र तेज स्वरूप और गतिवान प्रतीत होती है तथापि उनकी मूल सत्ता एक ही है, विभिन्न घटों में एक ही आकाश भरा हुआ है और अनेक जल पात्रों में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब झलक रहा है। बालक का शरीर पृथक है परन्तु उसका सारा भाग माता पिता के अंश का ही

बना है। आत्मा सत्य है पर उसकी सत्यता परमेश्वर है। विशुद्ध और मुक्त आत्मा परमात्मा है। अन्त में आकर यहां एकता है। यहाँ वह स्थिति है जिस पर खड़े हो कर जीव कहता है 'सोऽहमस्मि' अर्थात् वह परमात्मा मैं हूं और उसे पूरी अनुभूति हो जाती है कि संसार के सम्पूर्ण स्वरूपों के नीचे एक जीवन, एक बल, एक सत्ता, एक असलियत छिपी हुई है।

दीक्षितों को यह चेतना में जग जाने के लिए हम वार वार अनुरोध करेंगे। क्यों कि 'मैं क्या हूँ ?' इस सत्यता का ज्ञान प्राप्त करना सच्चा ज्ञान है। जिसने सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उसका जीवन प्रेम, दया, सहानुभूति, सत्य और उदारता से परिपूर्ण होना चाहिए। कोरी कल्पना या पोथी पाठ से क्या लाभ हो सकता है ? सच्ची अनुभूति ही सच्चा ज्ञान है और सच्चे ज्ञान की कसौटी उसका जीवन व्यवहार में उतरना हो सकता है।

साधक भ्रम में न पड़ें और न किसी प्रकार का भय करें। ऊंची स्थिति इस समय ऐसी प्रतीत हो रही होगी मानों यह कोई सन्यास लेने और विरक्त बन कर जंगलों में चल जाने का पथ है ऐसा भी भान होता होगा कि इस स्थिति पर पहुँच कर हम सांसारिक कार्यों के अयोग्य हो जायेंगे और व्यवहार पटुता जाती रहेगी। ऐसा भ्रम आरम्भ में सभी जिज्ञासुओं को हो सकता है इस लिए आचार्य लोग क्रमशः शिक्षा देते हैं और आगे के उन साधनों को छिपाये रहते हैं जिनका अभ्यास उसे अन्त में करना है जो लोग कभी जन्म जन्मान्तरों में भी इस दशा को प्राप्त नहीं हुए हैं उनका भय स्वाभाविक है। जिसने हाथी का स्वरूप कभी भी देखा न हो उसके लिऐ यह बड़े अचम्भे की बात होगी कि अचानक उस विशाल काया वाले

प्राणी को देखे। यह तो उसे और भी कष्ट प्रद प्रतीत होगा कि एक दम बिना दिखाये हुये हाथी पर चढ़ बैठने को उससे कहा जाय। जो जिज्ञासु अभी साधन पथ पर अग्रसर नहीं हुए हैं उन से हम यही कहेंगे कि वे यह समझें कि इस पुस्तक का केवल एक ही पाठ है। उसका साधन समाप्त करने के बाद दूसरे पाठ को खोलें। दो सीढ़ियों पर चढ़ आने के बाद वे देखेंगे कि तीसरी सीढ़ी कितनी शीतल, शान्ति प्रद, आकर्षक और सुख कर है।

अपने साधकों को हम विश्वास पूर्वक कहते हैं कि वे साधन पथ पर कदम रखें, इसमें कुछ भी खतरा और भय नहीं है। आप लोक व्यवहार के अयोग्य नहीं हो जावेंगे वरन् सच तो यह है कि सब दृष्टियों से अधिक योग्य बन जाओगे। जब आत्म स्वरूप को पहचान लोगे तो तुम्हें वे सब अधिकार दिये जावेंगे जिनसे अब तक वंचित हो। नौकरों की गुलामी से छुटकारा मिलेगा और अपने सब औजारों को ठीक प्रकार काम में लाने लगोगे उनके सदुपयोग के सब प्रकार महान तम कार्यों को पूरा किया जाता है।

पुस्तक की इस छोटी सी शब्दावली में जो कुछ बताने का प्रयत्न किया गया है वह पूर्ण नहीं है। शब्दों में इतनी शक्ति है भी नहीं कि वह उस महान तम रस का अनुभव करा सकें। मिश्री की मिठास के तब तक शब्दों द्वारा अनुभव नहीं कराया जा सकता जब तक किसी ने उसे चखा न हो। फिर सच्चिदानन्द से तो बहुत ही नीचे शब्दों की गति समाप्त हो जाती है। हम चाहते हैं कि जिज्ञासु सत्य की एक धुंधली झांकी कर सकें और उसमें प्रवेश करने की इस पग डन्डी को जान लें। बताये हुए साधन बच्चों के से खेल प्रतीत हो सकते हैं। दूसरे आचार्य कठोर साधनायें व और उग्र तपों के साथ आध्यात्म पथ में

प्रवेश कराते हैं और साधक को लौकिक व्यवहारों में सर्वथा दूर या उदासीन हो जाने के लिए कहा जाता है। इसके मुकाबिले में हमारी ध्यानावस्थित होकर मानस पटल पर कुछ भावनायें अंकित करने मात्र की शिक्षा अधूरी और उपेक्षणीय मालूम पड़ेगी। और वे सोचेंगे कि विकास इतना सस्ता नहीं हो सकता।

हम शिष्यों से इतना ही कहेंगे कि सचाई एक है। उपकरणों से इसका महत्व घट बढ़ नहीं सकता। हमारा विश्वास है करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति लगे हुए विशाल मन्दिर की भव्य मूर्ति का दर्शन करने जाने के लिए बड़ा परिश्रम किया जाता है परन्तु अपने घर की देव प्रतिमा को उतनी ही श्रद्धा के साथ पूजा जाय तो क्या फल न मिलेगा? राजा जनक विख्यात योगी थे उन्हें विदेह की उपमा मिली थी। क्या उन्होंने शारीरिक कष्टों वाला उग्र तप किया था? यदि नहीं तो योगियों से ऊँची श्रेणी पर कैसे पहुंचे? सम्पूर्ण तपश्चर्या मानसिक विकास आत्मा, की सच्ची अनुभूति, सत्य का अस्तित्व लक्ष है। यह सरल साधन भी वहां तक ले पहुँचेगा। ऐसा विश्वास साधकों को हम दृढ़ता पूर्वक दिलाते हैं। जैसे २ वे आगे कदम बढ़ाते जायेंगे वैसे २ ही स्वयं प्रमाण प्राप्त करते जायेंगे और हमारी ही तरह वे स्वयं भी निष्ठा करने लगेंगे।

यह सरल साधन भी कठिन है। मन की एकाग्रता और हृदय पटल पर किसी भावना को गहरी-गहरी-गहरी और इतनी गहरी कि जहां पहुँच कर वह अनुभूति और निष्ठा का रूप धारण करले। उतनी सुगम नहीं है जितनी समझी जाती है। मन को बारबार पकड़ कर एक जगह स्थिर करना होगा, उसे शिक्षा देनी होगी, शरीर को पूरी तरह शिथिल होने का

अ... ..., भावना पर पूरी निष्ठा करनी होगी, और मन ... वृत्तियों से प्रार्थना करनी होगी कि वे कृपा पूर्वक साधं... विघ्न न डालें। क्या इतने से ही काम समाप्त हो जायग नहीं। नीच वृत्तियां देखेंगी कि यह हमारी जीवन हानि क. अनुष्ठान है हमें वहिष्कृत करने के लिए यह प्रयोग किया जा रहा है। तब वे पूरे बल के साथ तुम्हारे साधन को खण्डित करने, इस यज्ञ को विध्वन्श करने का प्रयत्न करेंगी। उसके साथ घनघोर युद्ध करना और उन्हें परास्त करना होगा। इतने कठोर साधना का इतना सरल न समझना चाहिए जितनी कि इन पृष्ठों को पढ़ते समय प्रतीत होता है।

ईश्वर तुम्हें इस महान साधन पथ पर घसीट ले जावें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

इस पाठ के मन्त्र

—मेरी भौतिक वस्तुऐं महान् भौतिक तत्व की एक क्षणिक झांकी हैं।

—मेरी मानसिक वस्तुऐं अविच्छन्न मानस तत्व का एक खण्ड हैं।

—भौतिक और मानसिक तत्व अबाध गति से बह रहे हैं, इस लिए मेरी वस्तुओं का दायरा सीमित नहीं। समस्त ब्रह्माण्डों की वस्तुऐं मेरी हैं।

—अविनाशी आत्मा, परमात्मा का अंश है और अपने विशुद्ध रूप में वह परमात्मा ही है।

—मैं विशुद्ध हो गया हूँ, परमात्मा और आत्मा की एकता का अनुभव कर रहा हूँ।

"सोऽहमस्मि"—मैं वह हूँ—